धर्मायण

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक : 79 (विशेषांक)

आश्विन–अग्रहण, 2068

2011 ई0

सम्पादक-मण्डल

प्रो. काशीनाथ मिश्र

महन्त उद्धवदासजी

डा. श्रीरंजन सूरिदेव

प्रधान सम्पादक

भवनाथ झा

महावीर मन्दिर प्रकाशन के लिए *प्रो. काशीनाथ मिश्र* द्वारा प्रकाशित तथा **प्रकाश ऑफसेट, पटना में मुद्रित**

पत्र-सम्पर्क:

धर्मायण,
पाणिनि-परिसर,
बुद्ध-मार्ग,
पटना-800001
दूरभाष–0612-6453736
E-mail: mahavirmandir@gmail.com

मूल्य : **दस रुपये**

विषय-सूची

1. हरिहर–क्षेत्र–माहात्म्य - पं. भवनाथ झा 2

2. वाल्मीकि-रामायण के अनुसार समुद्र-मन्थन की कथा - आचार्य किशोर कुणाल 9

3. समुद्र मन्थन की कथा - संकलन, पं. भवनाथ झा 13

4. 'सूरसागर' का समुद्र-मन्थन-प्रसंग- 23

5. The Churning of the Ocean (Extracted from the Mahabharata) - Trans. by R.T.H. Griffith 26

6. कुम्भपर्व का शास्त्रीय स्वरूप हिन्दी अनुवाद एवं प्रस्तुति - पं. भवनाथ झा 30

7. सिमरिया में कुम्भ/अर्द्धकुम्भ के प्रश्न पर श्री चिदात्मन् स्वामी का पक्ष - 44

8. माननीय पटना उच्च न्यायालय द्वारा गठित समिति की सिमरिया में अर्द्ध-कुम्भ विषयक संस्तुति- 48

9. पर्व-निर्णय ग्रन्थ के भूमिका लेखक श्री नगेन्द्र कुमार शर्मा के द्वारा भूमिका में कुम्भपर्वनिर्णय निबन्ध का अंग्रेजी में प्रस्तुत संक्षिप्त विवेचन- 63

10. सिमरिया में कार्तिक कल्पवास की मोक्षदायिनी परम्परा को बाधित न करें - आचार्य किशोर कुणाल 65

11. श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता - डॉ. सीताराम झा 'श्याम' 71

पुस्तक-समीक्षा

अगस्त्य-संहिता का समीक्षात्मक विवरण प्रो. रामविलास चौधरी 80

हरिहर-क्षेत्र-माहात्म्य

अनु०- भवनाथ झा

वाराह पुराण के 145वें अध्याय में श्लोक सं. 75 से अध्याय के अन्त तक शालग्राम क्षेत्र के अन्तर्गत देवह्रद, 'सर्वतीर्थकदम्बक' एवं हरिहर-क्षेत्र का वर्णन है। यहाँ वर्णन की क्रमबद्धता से स्पष्ट होता है कि ये तीनों क्षेत्र एक ही भू-भाग में स्थित है। हरिहर क्षेत्र के वर्णन में यह स्पष्ट है कि यहाँ भागीरथी गंगा और गण्डकी का संगम हुआ है।

वर्तमान में यह बिहार राज्य का हाजीपुर एवं सोनपुर का क्षेत्र है। सोनपुर में विष्णु एवं शिव के सम्मलित रूप की मूर्ति है, जो सदियों से पूजित है। कहा जाता है कि इस स्थान पर गुरु नानक देव भी दर्शन करने के लिए आये थे। गज और ग्राह के बीच युद्ध एवं भगवान् विष्णु द्वारा गजेन्द्र-मोक्ष की कथा भी गण्डकी नदी से जुड़ी हुई है, जो गण्डकी यहाँ भागीरथी गंगा से मिलकर संगम का पुण्य देती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार सोन नदी का गंगा के साथ संगम कभी पटना से पूर्व था किन्तु आज कोईलवर के पास है अत: कभी न कभी सोन का भी संगम इस क्षेत्र के पास अवश्य रहा होगा, जिसके कारण यहाँ त्रिवेणी का भी माहात्म्य रहा है। भगवान् विष्णु के कपोल प्रदेश से स्वेद (पसीना) के रूप में उत्पन्न होनेवाली कृष्णा-गण्डकी भगवान् विष्णु के वरदान से ही अपने गर्भ में शालग्राम शिला के रूप में विष्णु को धारण करनेवाली नदी इस सम्पूर्ण क्षेत्र को महिमामण्डित करती है।

हाजीपुर का कोनहारा घाट भी वराह-पुराण मे वर्णित देवह्रद से अभिन्न प्रतीत होता है। 'कोनहारा' शब्द संस्कृत के 'कोणह्रद' शब्द का तद्भव रूप है। यह गंगा एवं गण्डकी के संगम पर प्राकृतिक रूप से बननेवाला एक महान् गर्त है, जिसके माहात्म्य का वर्णन यहाँ किया गया है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से 'ह्रद' शब्द के दो तद्भव रूप बिहार की भाषाओं में है एक 'दह' रूप है जो हथिदह, नागदह, पुरनदह (पुण्डरीकह्रद) आदि शब्दों में है तथा दूसरा रूप हरा, हारा, हार आदि हैं जो देवहार, फुलहारा आदि शब्दों में आया है। अत: भाषा-विज्ञान के अनुसार हाजीपुर का कोनहारा घाट कोणह्रद है, जिसका दूसरा नाम देवह्रद बतलाया गया है। इनमें से पहला नाम स्थान-सूचक है तो दूसरा नाम माहात्म्य-सूचक है।

इस देवह्रद के समीप राजा बलि द्वारा यज्ञ करने की कथा है। विद्यापति ने भी अपने ग्रन्थ 'भू-परिक्रमणम्' में सरयू और गंगा के संगम के निकट 'बलिग्राम' को बलि की राजधानी माना है। वहाँ समीप में ही भगवान् वामन का आश्रम माना है। अत: गण्डकी और गंगा के संगम पर बलि-यज्ञ-स्थान का उल्लेख परम्परा के अनुकूल है। इस यज्ञ में भगवान् विष्णु के आगमन की कथा सर्वविदित है।

मिथिला के प्रसिद्ध महाकवि विद्यापति कृत 'भू-परिक्रमणम्' में तीर्थों के वर्णन के क्रम में उन्होंने बलराम की तीर्थयात्रा को योजक कथा के रूप में उपपन्न किया है। वस्तुत: यह ग्रन्थ विद्यापति ने उस समय लिखा था, जब वे अपने आश्रयदाता शिवसिंह के पिता देवसिंह के साथ तीर्थयात्रा की थी। अत: यह सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रत्यक्ष यात्रा-वृत्तान्त है और इसकी प्रामाणिकता नि:सन्देह है। इस कथा

के अनुसार बलराम ने जब पुराण के प्रवक्ता सूत का वध किया तो उन्हें ब्रह्महत्या का पाप लगा। इसके प्रायश्चित्त के लिए वे नैमिषारण्य से तीर्थयात्रा के लिए निकले। 'भू-परिक्रमणम्' ग्रन्थ में विद्यापति के अनुसार सरयू और गंगा के संगम पर बलिग्राम (बलिया) है। यह त्रिकोण क्षेत्र आठ योजन में व्याप्त है तथा इसके अन्तर्गत 200 गाँव है। यही महामुनि भार्गव का पवित्र स्थान है। इस क्षेत्र में लोहड़ि और ताजपुर अन्य दो महाग्राम हैं। इसी क्षेत्र में 'विक्रममूर्ति' एक स्थल है जहाँ श्रावणी पूर्णिमा को विष्णु ने वामनावतार ग्रहण कर बलि को बाँधा था। यह विक्रम-स्थल नदी तट पर है। विद्यापति के अनुसार इसी के निकट दानक नामक गाँव था जो संगम के वेग से नष्ट हो गया है। इस गाँव में कुश की नोक से शुक्राचार्य की आँख फूट गयी थी। 'भू-परिक्रमणम्' ग्रन्थ में 'सिद्धदेशविवरणम्' का संगत अंश इस प्रकार है-

गंगाया उत्तरे पारे दर्दुरक्षेत्रं जगाम ह।।
बलिग्रामश्च तत्रैव सरयूसंगमान्तिके।

गंगा के उत्तर तट पर बलराम दरर्दुर क्षेत्र पहुँचे जहाँ सरयू और गंगा के संगम के पास बलिग्राम था।

त्रिकोणक्षेत्रं केचिच्च गायन्ति दर्दुरे नृप।।
अष्टयोजनपरिमितो द्विशतग्रामसंयुतः।
भार्गवमुनेश्च सुस्थानं सर्वलोकविमुक्तिदम्।

इस दर्दुर क्षेत्र में कुछ लोग त्रिकोण क्षेत्र भी मानते हैं, जो आठ योजन विस्तृत है और इस क्षेत्र में दो सौ गाँव हैं। यहीं पर परशुराम मुनि का सुन्दर स्थान है, जो सबको मुक्ति प्रदान करनेवाला है।

लोहडिग्रामो यत्रैव विश्रुतो बालियान्तरे।।
ताजपुराख्य महाग्रामो बलदेवो मुनिना सह।

वहीं पर बलिया के पास लोहड़ि नामक गाँव है, फिर ताजपुर नामक विशाल ग्राम है, जहाँ बलदेव मुनि के साथ गये।

प्रदक्षिणं क्षेत्रमपि चकार मुनिना सह।।
त्रिविक्रममूर्त्तिश्च यत्रैव गृहीतो येन विष्णुना।

उन्होंने मुनि के साथ उस क्षेत्र की प्रदक्षिणा की। इसी स्थान पर भगवान् विष्णु ने त्रिविक्रम का रूप धारण किया था।

श्रावणशुक्लपक्षीयपञ्चदश्यां हि वामनः।।
बलिराजनिकटे याञ्चां चकार कृतवान् पुरा।

प्राचीन काल में भगवान् वामन ने बलिराज के समक्ष श्रावण की पूर्णिमा के दिन याचना की थी।

त्रिविक्रमस्थले हि मुनयः सन्ति तटिनीतटे।।
त्रिपादभूमिश्च यत्रैव हृतवान् वामनेश्वरः।
बलिग्रामसमः कश्चित् पुण्यभूमिर्न विद्यते।।

इस त्रिविक्रम स्थल पर नदी के तट पर मुनिगण वास करते हैं और भगवान् वामन ने यही तीन डग भूमि राजा बलि से ली थी। अतः बलिग्राम के समान पुण्यभूमि इस पृथ्वी पर नहीं है।

सरयूगंगयोः संगे दानकग्रामः पुरा स्थितः।
संगमवेगतो येन ताडितो देवसिंहराट्।।

हे महाराज देवसिंह! सरयू और गंगा के संगम पर प्राचीन काल में दानक नामक गाँव था, जो संगम के वेग से नष्ट हो गया।

यत्र शुक्राचार्य्यमुनिः काणत्वं प्राप्तवान् कुशैः।
दिवसत्रयं च तत्रैव ह्युषितः मुनिना सह।।
वज्रसारमहीपालं चोद्धृतवान् संगमान्तिके।

यहाँ पर शुक्राचार्य कुश की नोक चुभने के कारण अन्धे हो गये थे। इस स्थान पर बलराम ने तीन दिन निवास कर वज्रसार नामक राजा का उद्धार संगम के समीप किया।

इस उद्धरण से पता चलता है कि सोनपुर से कम दूरी पर ही राजा बलि का आवास था अतः गंगा और गण्डक के संगम के पास यज्ञ भूमि बनाना असंगत नहीं है।

वाराह-पुराण के अनुसार इस देवह्रद में सुनहले रंग के छत्तीस कमल खिलते हैं। यहाँ दस रात्रि तक निवास करते हुए स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। भगवान् विष्णु पृथ्वी से कहते हैं कि हे वसुन्धरे यहाँ मृत्यु प्राप्त कर प्राणी मेरे समान हो जाता है।

इसी स्थल पर दो देवनदियों के संगम का उल्लेख हुआ है, जिनमें से एक नदी भगवान् शंकर के जटाजूट से निःसृत श्वेतगंगा है और दूसरी नदी कृष्णा गण्डकी है। यह संगम स्थान सिद्धाश्रम कहलाता है। यहाँ भगवान् शंकर का तपोवन है। इस स्थल पर अनेक प्रकार के फूल और फल उत्पन्न होते हैं। केला, काँजी, खजूर, नारियल, नीबू, बेर, दाडिम आदि फल बहुतायत में मिलते हैं। यहाँ देवों के जोड़े आकर क्रीड़ा करते हैं।

इस क्षेत्र में माघ मास में स्थान करने से प्रयाग में स्नान करने का फल मिलता है। कार्तिक मास में जब सूर्य तुला राशि में स्थित हो तो विधि-पूर्वक संयमित होकर स्नान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। जो तीन रात्रि तक संयमपूर्वक यहाँ वास करते हैं वे राजसूय यज्ञ का फल पाते हैं।

भगवान् विष्णु कहते हैं कि यहाँ भगवान् शिव मेरे दक्षिण भाग में अवस्थित हैं। इस प्रकार यह हरिहरात्मक क्षेत्र है। यहाँ मृत्यु पाकर प्राणी अपने कर्म के अनुसार मेरा स्थान प्राप्त करते हैं।

आनन्द-रामायण में हरिहर-क्षेत्र

संस्कृत के रामकाव्यों की परम्परा में आनन्द रामायण भी बहुचर्चित ग्रन्थ है। इस परम्परा इसे भी वाल्मीकि कृत मानती रही है। इस आनन्द-रामायण के यात्राकाण्ड के अनुसार प्राचीन काल में गंगा और सोन का संगम फतुहा के निकट था, जहाँ महर्षि विश्वामित्र के साथ मिथिला यात्रा के क्रम में भी श्रीराम गये थे, इस संगम पर तीन रात्रि रहकर गण्डक और गंगा के संगम पर पहुँचे-

त्रिरात्रे समतिक्रम्य गण्डकी संगमे ययौ।
कस्मिंस्तीर्थे त्रिरात्रं च पञ्चरात्रं च क्वचित्।।६९।।

अर्थात् इस संगम पर तीन रात्रि रहकर गण्डक और गंगा के संगम पर पहुँचे। किसी तीर्थ पर तीन रात तो कहीं पाँच रात बिताये।

यहाँ गण्डकी नदी को पार करने का उल्लेख नहीं है; अतः गण्डक और गंगा के पूर्वी संगम का संकेत हो रहा है। यह स्थान वर्तमान में हाजीपुर के **कोनहारा घाट** के नाम से प्रसिद्ध है।

यहाँ से सीधे नेपाल में महादेव (मुक्तेश्वर महादेव?) का दर्शन करने चले गये। वहाँ से लौटकर हरिहर क्षेत्र पहुँचे-

गण्डकी संगमे स्नात्वा नैपाले जगदीश्वरम्।
दृष्ट्वा हरिहरक्षेत्रं ययौ रघुकुलोद्वहः।
एवं कुर्वन् स तीर्थानि सर्वाणि रघुनन्दनः।।

अर्थात् श्रीराम गण्डकी के संगम पर स्नान करके नेपाल-देशीय मन्दिर (नेपाली-मन्दिर, कोनहारा घाट पर स्थित) में जगदीश्वर का दर्शन कर हरिहर-क्षेत्र पहुँचे।

यहाँ से उन्होंने मिथिला में प्रवेश किया। अत:यह हरिहर-क्षेत्र वर्तमान **सोनपुर** है।

वाराह-पुराण के अनुसार इस प्रकार शालग्राम क्षेत्र के अन्तर्गत हरिहर क्षेत्र अथवा हरिक्षेत्र का माहात्म्य यहाँ वर्णित है।

तत्र देवह्रदं नाम मम क्षेत्रं वसुन्धरे।
यत्र कांतासि मे भूमे बलेर्यज्ञविनाशनात्॥७५॥
स ह्रदो वरदः श्रेष्ठो मनोज्ञः सुखशीतलः।
अगाधः सौख्यदश्चापि देवानामपि दुर्ल्लभः॥७६॥
तस्मिन् ह्रदे महाभागे मम वै नियमोदके।
मत्स्याश्चक्रांकिताश्चैव पर्यटन्ते इतस्ततः॥७७॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे।
महाश्चर्यं विशालाक्षि यत्र तत्परिवर्त्तते॥७८॥
पश्येति श्रद्दधानस्तु न पश्येत्पापपूरुषः।
तस्मिन्देवह्रदे पुण्यं चतुर्विंशतिद्वार्दश॥७९॥
सौवर्णानि च पद्मानि दृश्यन्ते भास्करोदये।
तावत्पश्यन्ति भूतानि यावन्मध्यन्दिनं भवेत्॥८०॥

हे पृथिवी! वहाँ देवह्रद नाम का मेरा एक क्षेत्र है, जहाँ बलि का यज्ञ मेरे द्वारा विनष्ट करने के कारण पृथिवी सुन्दर हो गयी है। वह ह्रद वरदान देनेवाला है, श्रेष्ठ, सुन्दर, सुख देनेवाला शीतल, अथाह, सुखप्रद है, जो देवों के लिए भी दुर्लभ होता है। हे सौभाग्यवती पृथ्वी! उस ह्रद में, जहाँ हमेशा जल भरा रहता है, चक्र के चिह्न से युक्त मछलियाँ इधर उधर घूमती रहती हैं। हे पृथिवी! मैं यहाँ की दूसरी बात बतलाता हूँ, जिसे सुनो। यह महान् आश्चर्य का विषय है, जो यहाँ घटित होता है। इस घटना को केवल श्रद्धा रखनेवाले ही देख पाते हैं। पापी इसे नहीं देख पाते। इसी ह्रद में चौबीस एवं बारह यानी छत्तीस स्वर्णकमल सूर्योदय होने पर खिल जाते हैं, जो दोपहर तक दिखाई पड़ते हैं।

यत्र स्नाता दिवं यांति शुद्धा वाक्कायजैर्मलैः।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत दशरात्रोषितो नरः॥८१॥
दशानामश्वमेधानां प्राप्नोत्यविकलं फलम्।
अथाऽत्र मुञ्चते प्राणान्मम चिन्ताव्यवस्थितः॥८२॥
अश्वमेधफलं भुक्त्वा भूमे मत्समतां व्रजेत्।

यहाँपर स्नान करनेवाले वाणी एवं शरीर से उत्पन्न अशुद्धियों का त्यागकर स्वर्ग जाते हैं। वहाँ दस रात भर रहकर जो स्नान करता है, वह दस अश्वमेध यज्ञ करने का अविकृत फल पाता है। मेरा चिन्तन करता हुआ जो यहाँ प्राणत्याग करता है वह अश्वमेध यज्ञ के फल का भोग कर मुक्त हो जाता है तथा मेरे समान हो जाता है।

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि क्षेत्रं गुह्यं परं मम॥८३॥
संभदो देवनद्योस्तु समस्तसुखवल्लभः।
दिवोऽवतीर्य तिष्ठन्ति देवा यत्र सहप्रियाः॥८४॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव नागकन्याः सहोरगैः।
देवर्षयश्च मुनयः समस्तसुरनायकाः॥८५॥
सिद्धाश्च किन्नराश्चैव स्वर्गादवतरन्ति हि।

हे पृथिवी! मैं और भी दूसरे स्थान के विषय में कहता हूँ, जो मेरा गुप्त क्षेत्र है। वहाँ दो देव-नदियों का संगम है और वह सभी सुखों का स्वामी है। उस स्थान पर अपनी प्रियाओं के साथ उतरकर देवगण भी ठहरते हैं। गन्धर्व एवं अप्सराएँ, नाग एवं नागकन्याएँ, देव, ऋषि मुनि, सभी देवनायक, सिद्ध एवं किन्नर यहाँ स्वर्ग से उतरा करते हैं।

नेपाले यच्छिवस्थानं समस्तसुखवल्लभम्॥८६॥
तेभ्यस्तेभ्यश्च स्थानेभ्यस्तीर्थेभ्यश्च विशेषतः।
महादेवजटाजूटान्नीलकण्ठाच्छिवालयः ॥८७॥

नेपाल में जो शिव का स्थान है, जो कि सभी सुखों का मालिक है, उन स्थानों से तथा तीर्थों से विशिष्ट यह स्थान है, जहाँ महादेव की जटा से तथा नीलकण्ठ महादेव से भी विशिष्ट यहाँ का शिवालय है।

श्वेतगंगेति या प्रोक्ता तया संभूय सादरम्।
नाना नद्यः समायाता दृश्यादृश्यतया स्थिताः॥८८॥
गण्डक्या कृष्णया चैव या कृष्णस्य तनूद्भवा।
तया संभेदमापन्ना या सा शिवतनूद्भवा॥८९॥

जो श्वेतगंगा कही जाती है उसके साथ मिलकर अनेक नदियाँ यहाँ हैं, जिनमें से कुछ दिखाई पड़ती हैं, कुछ नहीं। कृष्ण के शरीर से उत्पन्न हुई कृष्णा गण्डकी के साथ शिव के शरीर से उत्पन्न श्वेत गंगा यहाँ यहाँ मिलती है।

त्रिशूलगंगेत्याख्याता सापि तत्र महानदी।
एवं नदीसमुद्भेदः सर्वतीर्थकदंबकम्॥९०॥

यहाँ यह महानदी गंगा त्रिशूलगंगा के नाम से विख्यात है। इस प्रकार नदियों के संगम का क्षेत्र सभी तीर्थों का समूह बन जाता है।

मम क्षेत्रे समाख्यातं पुण्यं परमपावनम्।
वसुधे त्वं विजानीहि देवानामपि दुर्ल्लभम्॥९१॥
यच्च सिद्धाश्रम इति विख्यातः पुण्यवर्द्धनः।
शंभोस्तपोवनं तत्र सर्वाश्रमवरं प्रति॥९२॥

हे पृथिवी! मेरे इस विख्यात, पुण्यमय एवं परम पवित्र क्षेत्र में पुण्य की वृद्धि करने वाला सिद्धाश्रम है, जहाँ भगवान् शंकर की तपोभूमि है। वह सभी आश्रमों में श्रेष्ठ है।

नानापुष्पफलोपेतं कदलीषण्डमण्डितम्।
निचुलैश्चैव पुन्नागैः केसरैश्च विराजितम्॥९३॥
खर्ज्जूराशोकवकुलैश्चूतैश्चैव प्रियालकैः।
नारिकेलैश्च पूगैश्च चंपकैर्जंबुभिर्धवैः॥९४॥
नारंगैर्बदरीभिश्च जंबीरैर्मातुलुंगकैः।
केतकीमल्लिकाजातीयूथिकाराजिराजितम् ॥९५॥
कुन्दैः कुरवकैर्नागैः कुटजैर्दाडिमैरपि।
आगत्य यत्र क्रीडन्ति देवानां मिथुनानि च॥९६॥

यह स्थान नाना प्रकार के फूलों और फलों से भरा हुआ है। केला, काँजी, निचुल, पुंनाग, केसर, खजूर, अशोक, वकुल, आम, प्रियालक, नारियल, सुपारी, चंपा, जामुन, अर्जुन, नारंगी, बेर, जंबीरी नीबू, मातुलुंग, केतकी, मल्लिका, जूही, बेली, कुन्द, कुरवक, नाग, झिंटी, दाड़िम आदि से भरा हुआ है। यहाँ देवों के जोड़े आकर क्रीडा करते हैं।

तस्मिन्ह्रदे महापुण्ये पुण्यनद्योस्तु संगमे।
स्नानाच्छताश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥९७॥

उस महान् पुण्यमय ह्रद में दोंनों पुण्यमय नदियों का संगम है। इसमें स्नान करने से मनुष्य सौ अश्वमेध का फल प्राप्त करता है।

स्नात्वा तत्र तु वैशाखे गोसहस्रफलं भवेत्।
माघमासे पुनः स्नात्वा प्रयागस्नानजं फलम्॥९८॥
कार्त्तिके मासि यः स्नाति तुलासंस्थे दिवाकरे।
विधिना नियतः सोऽपि मुक्तिभागी न संशयः॥९९॥

इसमें वैशाख के मास में स्नान करने से हजार गोदान करने का फल मिलता है। फिर, माघमास में स्नान कर प्रयाग में स्नान करने का फल पाता है। कार्तिक मास में जब सूर्य तुला राशि में होते हैं तब विधिपूर्वक, संयत होकर स्नान करने से वह मुक्ति का भागी बन जाता है इसमें संदेह नहीं।

यस्त्रिरात्रमुषित्वा तु नियते नियताशनः।
राजसूयफलं प्राप्य मोदते देववद्दिवि॥१००॥

जो तीन रात नियमपूर्वक भोजन करता हुआ वहाँ वास करता है, वह राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है और स्वर्ग में देवता के समान सुख पाता है।

यज्ञस्तपोऽथवा दानं श्राद्धमिष्टस्य पूजनम्।
यत्किञ्चित्क्रियते कर्म तदनन्तफलं भवेत्॥१०१॥
भूमे तस्यापराधांश्च सर्वानेव क्षमाम्यहम्।

यज्ञ, तपस्या, दान इष्टदेव का पूजन, जो कुछ भी यहाँ किया जाता है, वह अनन्त फल देनेवाला हो जाता है। हे पृथिवी! उसके सभी अपराधों को मैं क्षमा कर देता हूँ।

गंगायमुनयोर्यद्वत् संगमो मर्त्त्यदुर्ल्लभः॥१०२॥
तथैवायं देवनद्योः संगमः समुदाहृतः।

हे पृथिवी! गंगा एवं यमुना का संगम जैसे मनुष्यों के लिए अलभ्य-लाभ है, उसी प्रकार देवनदियों का यह संगम कहा जाता है।

एतद् गुह्यं परं देवि मम क्षेत्रे वसुन्धरे॥१०३॥
अहमस्मिन्महाक्षेत्रे धरे पूर्वमुखः स्थितः।
शालग्रामे महाक्षेत्रे भूमे भागवतप्रियः॥१०४॥

हे पृथिवी! मेरे क्षेत्र में यह परम गोपनीय स्थान है। मैं विशाल शालग्राम क्षेत्र के अन्तर्गत इस महान् क्षेत्र में पूर्वाभिमुख होकर वास करता हूँ और भगवान् में भक्ति रखनेवालों का प्रिय हूँ।

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे।
अन्तर्गुह्यं परं श्रेष्ठं यन्न जानन्ति मोहिताः॥१०५॥

हे पृथिवी! और भी मैं कहता हूँ; इसे सुनो। इसके भीतर एक अति गुप्त स्थान है, जिसे माया से मोहित लोग नहीं जान पाते।

शिवो मे दक्षिणस्थाने तिष्ठन् वै विगतज्वरः।
लोकानां प्रवरः श्रेष्ठः सर्वलोकवरो हरः॥१०६॥

यहाँ सभी लोकों में श्रेष्ठ तथा सभा लोकों के स्वामी शिव मेरे दाहिने भाग में निश्चिन्त होकर अवस्थित हैं।

तं ये विन्दन्ति ते देवि नूनं मामेव विन्दति।
ये मां विदन्ति देवेशि ते विदन्ति शिवं परम्॥१०७॥

हे पृथिवी! जो लोग उन्हें प्राप्त कर लेते हैं, वे वास्तव में मुझे ही प्राप्त करते हैं और जो मुझे पा लेते हैं, वे वस्तुतः परम शिव को पा जाते हैं।

अहं यत्र शिवस्तत्र शिवो यत्र वसुन्धरे।
तत्राहमपि तिष्ठामि आवयोर्नान्तरं क्वचित्॥१०८॥

हे पृथिवी! जहाँ मैं हूँ वहाँ शिव हैं, जहाँ शिव हैं वहाँ मैं रहता हूँ। हम दोनों में कहीं भी अन्तर नहीं है।

शिवं यो वन्दते भूमे स हि मामेव वन्दते।
लभते पुष्कलां सिद्धिमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः॥१०९॥

'जो शिव की वंदना करते हैं, वे मेरी वंदना करते हैं' ऐसा जो जानते हैं, वे पर्याप्त सिद्धि पाते हैं।

एवमेतन्महाभागे क्षेत्रं हरिहरात्मकम्।
मृता येऽत्र गतिं यान्ति मम कर्मानुसारिणः॥११०॥

हे सौभाग्यवती पृथिवी! इस प्रकार यह हरिहरात्मक क्षेत्र है। जो यहाँ मृत्यु पाते हैं, वे अपने कर्म के अनुसार मुझे पाते हैं।

मुक्तिक्षेत्रं प्रथमतो रुरुखण्डं ततः परम्।
संभेदो देवनद्योश्च त्रिवेणी च ततः परम्॥१११॥
क्षेत्रं प्रमाणं विज्ञेयं गण्डकी सङ्गतं परम्।

इस शालग्राम क्षेत्र में पहला मुक्तिक्षेत्र है, इसके बाद रुरुखण्ड है, तब दोनों देवनदियों का संगमक्षेत्र है, उसके बाद त्रिवेणी है। इसके बाद गण्डकी का संगम स्थान है। इस प्रकार शालग्राम क्षेत्र की माप है।

एवं सा गण्डकी देवि नदीनामुत्तमा नदी॥११२॥
गङ्गन्या मिलिता यत्र भागीरथ्या महाफला।
अपरं तन्महत्क्षेत्रं हरिक्षेत्रमिति स्मृतम्॥११३॥

हे देवि! इस प्रकार गण्डकी नदियों में उत्तम नदी है। जहाँ वह भागीरथी गंगा से मिलती है वहाँ अद्वितीय महान् क्षेत्र हरिक्षेत्र के नाम से जाना जाता है।

आदौ सा गण्डकी पुण्या भागीरथ्या च सङ्गता।
तस्य तीर्थस्य महिमा ज्ञायते न सुरैरपि॥११४॥

पहले तो गण्डकी नदी पुण्यमयी है, उसपर से भागीरथी के साथ यहाँ मिली हुई है। उस तीर्थ की महिमा तो देवता भी नहीं जानते हैं।

एतत्ते कथितं भद्रे शालग्रामस्य सुन्दरि।
गण्डक्याश्चैव माहात्म्यं सर्वकल्मषनाशनम्॥११५॥

हे सुन्दरि पृथ्वी! इस तरह मैंने शालग्राम क्षेत्र की महिमा कही, साथ ही गण्डकी नदी की महिमा का वर्णन किया, जिसे सुनकर सभी पापों का नाश हो जाता है।

❖

वाल्मीकि–रामायण के अनुसार समुद्र–मन्थन की कथा

आचार्य किशोर कुणाल

भारतीय पुराकथाओं की परम्परा में समुद्र-मन्थन की कथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह ऐसी परिस्थिति की कथा है, जब अदिति के पुत्र देव एवं दिति के पुत्र दैत्य दोनों कर्दम ऋषि के पुत्रों के रूप में आपस में मिलजुलकर रहा करते थे। इन भाइयों के बीच विवाद एवं देवासुर संग्राम की पृष्ठभूमि में सभी पुराणों में यही कथा कही गयी है। यह अमृत के अन्वेषण की कथा है, अमरत्व-प्राप्ति के लिए प्रयत्न की कथा है।

कुछ व्यक्तियों को गंगा-गण्डकी के संगम पर समुद्र-मन्थन की कथा विस्मयकारी लगती होगी। किन्तु यहाँ गंगा-गण्डकी का ही संगम नहीं था; बल्कि गंगा-गण्डकी के साथ शोण नदी भी यहीं मिलती थी। अतः यहाँ विशाल जलार्णव था, जो समुद्र-सदृश प्रतीत होता रहा होगा और तीन विशाल नदियों की जलधाराओं की टक्कर से यह जल इस प्रकार श्वेत प्रतीत होता था कि यह क्षीर-सागर दीखता था। दूसरी बात यह है कि समुद्र-मन्थन की घटना सृष्टि के प्रारम्भ में हुई थी; अतः इस समय इसके आगे भू-खण्ड न रहा हो और समुद्र यहीं से प्रारम्भ होता था; ऐसी सम्भावना रही होगी।

वाल्मीकि-रामायण में समुद्र-मन्थन की भूमि का पर्याप्त संकेत मिलता है। बालकाण्ड के 45वें सर्ग में विश्वामित्र श्रीराम को विशाला नगरी की प्राचीनता बतलाते हुए सबसे पहले समुद्र-मन्थन की कथा कहते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि इस देश में प्राचीन काल में जो घटना हुई है, उसे संक्षेप में सुनो। इस सर्ग के 14वें श्लोक में पंक्ति है- अस्मिन् देशे हि यद्वृत्तं शृणु तत्त्वेन राघव।।" यहाँ अस्मिन् शब्द का प्रयोग विशाला नगरी के लिए हुआ है। इस पंक्ति की व्याख्या करते हुए रामायण के तिलक टीकाकार रामाचार्य लिखते हैं–

"**अस्मिन् देशे विशालनगर्यधिष्ठानदेशे यद्वृत्तं पुरातनं तद्विषयां तत्त्वेन शृणु इति योजना।**"

रामायणशरोमणि टीकाकार शिवसहाय ने भी कहा है कि इन्द्र की कथा विशाला नगरी की कथा में उपयोगी है, इसलिए इस देश में जो घटना हुई है, उसे सुनो।

हे राम! शक्रस्य इन्द्रस्य शुभां कथां कथयतः प्रसङ्गसंगत्या वदतो मत्तः श्रूयतामेतेनेन्द्रकथा विशालाकथोपयोगिनीति सूचितम् अत एवास्मिन् देशे यद्वृत्तं तदपि तत्त्वेन शृणु अहं कथयामीत्यर्थः।।

इसी क्रम में विश्वामित्र श्रीराम को सबसे पहले समुद्र मन्थन की कथा कहते है। यहाँ स्पष्ट है कि समुद्र-मन्थन की भूमि विशाला नगरी से सम्बद्ध है।

विशाला नगरी वर्तमान वैशाली गण्डकी नदी से सिंचित भू-भाग के रूप में प्राचीन काल से प्रख्यात रही है, और सुमति से मिलने के बाद विश्वामित्र ने मिथिला जाने के लिए गण्डकी नदी को कहीं भी पार नहीं किया है। इसका अर्थ है कि उन्होंने जिस गंगा और सोन के संगम पर गंगा को पार किया था वह स्थान गण्डकी नदी से पूर्व था। प्राचीन काल में शोण नदी का गंगा के साथ संगम पाटलिपुत्र के निकट था, इसलिए पतंजलि ने **अनुशोणं पाटलिपुत्रम्** लिखा है। आज शोण का संगम कोइलवर के पास हो रहा है, जो पाटलिपुत्र से पर्याप्त पश्चिम है। इस प्रकार, गंडक एवं सोन दोनों नदियों की धारा कालक्रम से बदलती रही है। अतः

एक समय वर्तमान गण्डक-गंगा संगम के साथ सोन का भी संगम अवश्य रहा होगा। अतः वैशाली क्षेत्र में एक त्रिवेणी की स्थिति बनती है।

इस विशाला नगरी में समुद्र-मन्थन होने की जो कथा वाल्मीकि-रामायण में है, उसे यहाँ हिन्दी अनुवाद के साथ उद्धृत किया जा रहा है–

अस्मिन्देशे हि यद्वृत्तं शृणु तत्त्वेन राघव।।14।।

हे श्री राम, इस देश में जो घटना हुई है, उसे संक्षेप में सुनो।।14।।

पूर्वं कृतयुगे राम दितेः पुत्रा महाबलाः।
अदितेश्च महाभागा वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः।।15।।

हे रामचन्द्र, पहले सत्ययुग में दिति के पुत्र दैत्य बड़े शक्तिशाली थे और अदिति के पुत्र (देवता) भी बड़े पराक्रमी तथा धार्मिक थे।।15।।

ततस्तेषां नरव्याघ्र बुद्धिरासीन्महात्मनाम्।
अमरा विजराश्चैव कथं स्यामो निरामयाः।।16।।

हे नरश्रेष्ठ, उनलोगों ने विचार किया कि किस प्रकार हमलोग अमर और नीरोग होंगे, अर्थात् हमलोगों को कोई रोग न होगा और हमलोग कभी मरेंगे नहीं।।16।।

तेषां चिन्तयतां तत्र बुद्धिरासीद्विपश्चिताम्।
क्षीरोदमथनं कृत्वा रसं प्राप्स्याम तत्र वै।।17।।

इस प्रकार विचारकर उन बुद्धिमानों ने निश्चय किया कि क्षीरसमुद्र का मंथन कर हमलोग अमृत प्राप्त करें।।17।।

ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम्।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः।।18।।

ऐसा निश्चय कर उन तेजस्वियों ने वासुकी सर्प को मथने की रस्सी बनाया और मन्दर पर्वत को मथनी बनाकर सागर को मथना प्रारम्भ किया।।18।।

अथ वर्षसहस्रेण योक्त्रसर्पशिरांसि च।
वमन्तोऽतिविषं तत्र ददंशुर्दशनैः शिलाः।।19।।

इस प्रकार एक हजार वर्ष बीतने पर रस्सी बने हुए वासुकी मुखों से भयंकर विष निकालते हुए दाँतों से पर्वत को काटने लगे।।19।।

उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहलमहाविषम्।
तेन दग्धं जगत्सर्व सदेवासुरमानुषम्।।20।।

अग्नि के समान महाउग्र हालाहल विष निकला, जिससे देवता, असुर, मनुष्य आदि समस्त संसार जलने लगा।।20।।

अथ देवा महादेयं शंकरं शरणार्थिनः।
जग्मुः पशुपति रुद्रं त्राहि त्राहीति तुष्टुवुः।।21।।

देवता, शरण की इच्छा से, शंकर महादेव के यहाँ गये और उनलोंगो ने त्राहि–त्राहि कहकर पशुपति की स्तुति की।।21।।

एवमुक्तस्ततो देवैर्देवदेवेश्वरः प्रभुः।
प्रादुरासीत्ततोऽत्रैव शंखचक्रधरो हरिः।।22।।

देवताओं के ऐसा कहने पर, देवदेवेश्वर भगवान् हरि शंख–चक्र धारण करके वहीं प्रकट हुए।।22।।

उवाचैनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः।
दैवतैर्मथ्यमाने तु यत्पूर्वं समुपस्थितम्।।23।।
तत्त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो हि यत्।
अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो।।24।।

उन्होंने मुस्कुराकर शूलधारी रुद्र से कहा– हे देवश्रेष्ठ, 'देवताओं के समुद्र–मंथन करने से, सबसे पहले जो प्राप्त हुआ है, वह आपका है, क्योंकि आप देवताओं के अग्रगामी हैं। महाराज, यहाँ ठहरकर आप इस विष को ग्रहण करें।।24।।

इत्युक्त्वा च सुरश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत।
देवतानां भयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वाक्यं तु शार्ङ्गिणः।।25।।

इतना कहकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। देवताओं भयभीत देखकर और विष्णु की बात सुनकर।।25।।

हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपपम्।
देवान्विसृज्य देवेशो जगाम भगवान् हरः।।26।।

उस भयानक हालाहल विष को, अमृत के समान भगवान् शिव ने पी लिया और देवताओं को विदाकर वे स्वयं भी चले गये।।26।।

ततो देवासुराः सर्वे ममन्थू रघुनन्दन।
प्रविवेशाथ पातालं मन्थानः पर्वतोत्तमः।।27।।

हे रघुनन्दन, देवता और असुर मिलकर पुनः समुद्र–मथन करने लगे, अनन्तर मथनी–रूप पर्वत, पाताल में घुस गया।।27।।

ततो देवाः सगन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम्।
त्वं गतिः सर्वभूतानां विशेषेण दिवोकसाम्।।28।।

तब गन्धर्व, देवता आदि मिलकर मधुसूदन की स्तुति करने लगे– 'महाराज, आप सब प्राणियों के रक्षक हैं, विशेषकर देवताओं के।।28।।

पालयास्मान्महाबाहो गिरिमुद्धर्तुमर्हसि।
इति श्रुत्वा ह्रषीकेशः कामठं रूपमास्थितः।।29।।

हे महाबाहो, हमलोगों की रक्षा कीजिये। पाताल से पर्वत निकालिये।' यह सुनकर, भगवान् से कछुए का रूप धारण किया।।29।।

पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरिः।
पर्वताग्रं तु लोकात्मा हस्तेनाक्रम्य केशवः।।30।।

भगवान् विष्णु कच्छप का रूप धारण कर, अपनी पीठ पर पर्वत को धरकर, समुद्र में सो गये, और लोकात्मा केशव के सिरे पर अपना हाथ रक्खा, जिससे वह रहे।।30।।

देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः।
अथ वर्षसहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान्।।31।।
उदतिष्ठत्सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः।
अथ धान्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः।।32।।

इस प्रकार देवों को बीच में रखकर पुरुषोत्तम विष्णु समुद्र–मंथन करने लगे। हजार वर्ष बीतने पर, आयुर्वेदमय पुरुष धन्वन्तरि उत्पन्न हुए। वे धर्मात्मा दण्ड–कमण्डलु धारण किये हुए थे। उनका नाम धन्वन्तरि था। अनन्तर सुन्दरी अप्सराएँ भी निकलीं।।32।।

अप्सु निर्मथनादेव रसात्तस्माद्वरस्त्रियः।
उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन्।।33।।

हे नरश्रेष्ठ, जल में मथने से सुन्दर स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं, इस कारण उनका नाम अप्सरा पड़ा।।33।।

षष्टिः कोट्योऽभवंस्तासामप्सराणां सुवर्चसाम्।
असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः।।34।।

उन सुन्दरी अप्सराओं की संख्या आठ करोड़ हुई और उनकी सेवा करनेवाली दासियों की संख्या तो असंख्य थी।।34।।

न ताः स्म प्रतिगृह्णन्ति सर्वे ते देवदानवाः।
अप्रतिग्रहणादेव ता वै साधारणाः स्मृताः।।35।।

देव, दानव आदि में किसी ने स्त्रियों को ग्रहण नहीं किया, उनसे विवाह नहीं किया, इस कारण वे सर्वसाधारण की बनीं।।35।।

वरुणस्य ततः कन्या वारुणी रघुनन्दन।
उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम्।।36।।

हे रघुनन्दन, तदनन्तर वरुण की कन्या वारुणी समुद्र से निकली और उसने पति की खोज की।।36।।

दितेः पुत्रा न तां राम जगृहुर्वरुणात्मजाम्।
अदितेस्तु सुता वीर जगृहुस्तामनिन्दिताम्।।37।।

उस वरुण की पुत्री को दिति के पुत्रों ने ग्रहण नहीं किया, किन्तु अदिति के पुत्रों ने उस सुन्दरी को ग्रहण किया।।37।।

असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः।
हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन्वारुणीग्रहणात्सुराः।।38।।

इसी कारण दिति के पुत्र असुर कहे जाते हैं और अदिति के पुत्र सुर। उस वारुणी को लेकर देवतागण बहुत ही प्रसन्न हुए।।38।।

उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो मणिरंत्न च कौस्तुभम्।
उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ तथैवामृतमुत्तमम्।।39।।

उसके बाद उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला, जो घोड़ों में सर्वश्रेष्ठ था, मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ निकला और हे नरश्रेष्ठ, उत्तम अमृत भी निकला।।39।।

❖

समुद्र-मन्थन की कथा

संकलन : पं. भवनाथ झा

[पौराणिक परम्परा में समुद्र-मन्थन की कथा पर्याप्त चर्चित रही है। पुराणों के अतिरिक्त आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण महाभारत एवं हरिवंश में भी यह कथा अपने प्राचीन स्वरूप में उपलब्ध होती है। इन सभी स्थलों पर कथा अपने मूल स्वरूप में एक समान हैं, केवल कुछ वर्णनात्मक विविधता एवं समुद्र-मन्थन से निकले रत्नों की संख्या में विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यहाँ संस्कृत के आर्ष-ग्रन्थों से समुद्र-मन्थन की कथा संकलित की गयी है। परवर्ती भाषा काव्यों में गुरु गोबिन्द सिंह के 'बचित्र नाटक' एवं सूरदास कृत 'सूरसागर' से भी यह कथा यहाँ जिज्ञासु पाठकों के लिए संकलित है।]

वाल्मीकि रामायण

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - विष, धन्वन्तरि, अप्सरा, वारुणी, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ, अमृत)

वाल्मीकि-रामायण के बालकाण्ड के 45वें सर्ग में भी समुद्र-मन्थन की संक्षिप्त कथा आयी है। यहाँ श्रीराम के पूछने पर गुरु विश्वामित्र विशाला नगरी की प्राचीनता का वर्णन करते हुए दिति और अदिति के पुत्रों दैत्यों और देवों की कथा कहते हैं। दिति और अदिति के पुत्र प्राचीन काल में एकजुट होकर रहते थे। दोनों ने मिलकर ऐसा रस (अमृत) प्राप्त करने की बात सोची, जिससे वे अमर, अजर एवं नीरोग रह सकें-

ततस्तेषां नरव्याघ्र बुद्धिरासीन्महात्मनाम्।
अमरा विजराश्चैव कथं स्यामो निरामयाः॥१६॥
तेषां चिन्तयतां तत्र बुद्धिरासीद् विपश्चिताम्।
क्षीरोदमथनं कृत्वा रसं प्राप्स्यामि तत्र वै॥१७॥

इस स्थल पर देवासुर संग्राम की भूमिका के रूप में समुद्र-मन्थन की कथा है। यहाँ भी मन्दर पर्वत को मथनी, वासुकि नाग को रज्जु, कमठ-पृष्ठ को आधार बनाने का सामान्य उल्लेख है किन्तु महाभारत की कथा में जहाँ पर्वत शिखर को स्थिर रखने के लिए इन्द्र के वज्र का उल्लेख है तो यहाँ केशव के हाथ का उल्लेख हुआ है:-

पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरिः।
पर्वताग्रं तु लोकात्मा हस्तेनाक्रम्य केशवः॥३०॥

वाल्मीकि रामायण की इस कथा में एक नयी बात है कि समुद्र मन्थन से वारुणी की उत्पत्ति हुई तो दिति-पुत्रों ने उसे ग्रहण किया और वारुणी के उपभोग के बाद वे राक्षसों के साथ मिल गये। तब विष्णु ने युद्ध में सब को परास्त कर अमृत-कलश छीन लिया। यहाँ अमृत-पान से पूर्व कलश के लिए युद्ध होने की कथा का उत्स हमें मिलता है।

महाभारत

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - समुद्र-मन्थन के कारण दुग्ध के रूप में परिणत हुआ और वह दुग्ध फिर मन्थन से घृत बन गया। उस घृत से चन्द्रमा, लक्ष्मी, वारुणी, श्वेत अश्व, कौस्तुभमणि, और धन्वन्तरि। महाभारत के पाठान्तर से इनके अतिरिक्त पारिजात एवं सुरभि इन दोनों के भी नाम मिलते हैं।)

समुद्र-मन्थन की कथा महाभारत के आदिपर्व के अन्तर्गत आस्तीक पर्व के 18वें और 19वें अध्याय में है। इससे पूर्व अध्याय में शौनक के प्रश्न पर समुद्र-मन्थन का स्थान निरूपित करते हुए सौति कहते हैं कि मेरु पर्वत पर देवताओं की एक सभा हुई और उसमें समुद्र-मन्थन का निर्णय लिया गया। तब वे सब मन्दराचल पर्वत की ओर चले। मन्दराचल पृथ्वी के भीतर गड़ा हुआ था, जिसे देवगण उखाड़ नहीं सके, तब उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु से इसके लिए विनती की:-

भवन्तावत्र कुर्वातां बुद्धिं नैश्रेयसीं परम्।
मन्दरोद्धरणे यत्नः क्रियतां च हिताय नः॥ (१९:५)

तब भगवान् नारायण की आज्ञा से अनन्त शेषनाग ने मन्दराचल को उखाड़ लिया। तब देवगण उस पर्वत को उठाकर समुद्रतट पर पहुँचे और कूर्मपृष्ठ पर मन्दराचल को रखकर समुद्र-मन्थन प्रारम्भ किया। मन्दराचल के शिखर को इन्द्र ने अपना वज्र टिका कर स्थिर कर दिया। इस समुद्र-मन्थन के क्रम में पर्वत के घूमने के कारण जो औषधियाँ गिरी उसके पिस जाने से समुद्र का जल दूध बन गया और उस दूध से घृत बनने लगा।

बाद में अमृत-कुम्भ लेकर भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए। इस अमृत के लिए देवों और असुरों के बीच कोलाहल मचा किन्तु भगवान् विष्णु ने मोहिनी का रूपधारण कर दानवों को मोहित करते हुए अमृत-कलश ले लिया और अमृत परोसने लगे। पंक्ति में दैत्यों सहित दानव बैठे ही रह गये, सारा अमृत देवताओं के बीच परोस दिया गया। इससे कोलाहल मच गया।

आगे 19वें अध्याय में राहु द्वारा छल से अमृत पीने और सूर्य और चन्द्रमा द्वारा राहु की पहचान कराये जाने पर विष्णु के द्वारा शिरच्छेद की कथा है और इस कारण सूर्य एवं चन्द्रमा के ग्रहण का उल्लेख है।

इसी आस्तीक पर्व के 27वें अध्याय से 31वें अध्याय तक गरुड़ के द्वारा स्वर्गलोक से अमृत लाकर सर्पों की दासता से अपनी माता विनता को छुड़ाने का उल्लेख है। इस कथा में इन्द्र के गुरु बृहस्पति भी हैं और नागलोक में कुश पर अमृत घट रखे जाने के कारण कुश की पवित्रता ख्यात होने का उल्लेख है। इन्द्र द्वारा पुनः उस स्थान से घट का अपहरण करने के बाद भी उस स्थान को चाटने के कारण नागों की जिह्वा दो भागों में बँटने की कथा है।

हरिवंश

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - धन्वन्तरि, मद्य, श्रीदेवी, कौस्तुभ मणि, चन्द्रमा एवं उच्चैःश्रवा अश्व, अमृत)

महाभारत के खिल-पर्व के रूप में प्रतिष्ठित हरिवंश के भविष्य पर्व के 30वें अध्याय में भी समुद्र-मन्थन की कथा है। राजा वेन के पुत्र पृथु जब राजा थे, उस समय सत्ययुग का अन्त एवं

त्रेता युग का आरम्भ हो रहा था। उस समय दैत्य एवं देवगण गन्धमादन पर्वत पर वैशाख मास में बैठे हुए थे; दैत्यों को सब ओर से एक दिव्य सुगन्ध का अनुभव हो रहा था। इससे मदमत्त होकर दैत्यों ने समुद्र-मन्थन करने का प्रस्ताव रखा कि जिसके फूल में ऐसी शक्ति है उसके फल में न जाने क्या होगा? अतः हम सब समुद्र के जल में ओषधियों को डालकर मन्दराचल द्वारा उसका मन्थन करें-

तस्माद् वयं पयोमध्ये ओषध्यो निर्मथामहे।
मन्दरेण विशालेन बलिना काममरूपिणा॥११॥

दैत्यों ने मन्दराचल पर्वत को उखाड़ने का प्रयत्न किया, किन्तु सम्भव नहीं हो सका। तब वे सब ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने इस कार्य में सहयोग करने के लिए आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, देवता, यक्ष आदि का आह्वान किया। तब देवता भी इस कार्य में संलग्न हुए। सबने मिलकर मन्दराचल को मन्थन-दण्ड और वासुकि को रज्जु बनाकर ओषधियों सहित समुद्रजल का एक सहस्र वर्षों तक मन्थन किया। ओषधियों के योग से वह जल दूध बनकर अमृत बन गया, जिसे दानवों ने हर लिया। समुद्र के जल से धन्वन्तरि, मद्य, श्रीदेवी, कौस्तुभ मणि, चन्द्रमा एवं उच्चैःश्रवा अश्व की उत्पत्ति हुई। तब अमृत का प्रादुर्भाव हुआ। अमृत को जब दैत्यों ने अधिकार में ले लिया तब देवताओं ने कहा कि कोई दैत्य या दानव अमृत नहीं पी रहे हैं; किन्तु राहु अमृत-पान की चेष्टा कर रहा है। इसे सुनकर श्री हरि ने चक्र से राहु का सिर काट डाला। सनातन मुनियों और पितृगणों ने अमृत-कलश थाम लिया। इसी बीच स्वयं पृथ्वी देवी ने ब्रह्माजी के निर्देश पर इन्द्र के हाथ से अमृत कलश लेकर वहाँ से चली गयी।

विष्णु-पुराण

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - कामधेनु, वारुणी, पारिजात, अप्सरा, चन्द्रमा, विष, धन्वन्तरि, लक्ष्मी, अमृत।)

विष्णु-पुराण के प्रथम अंश के नवम अध्याय में समुद्र-मन्थन की कथा आयी है। यहाँ उल्लेख है कि एकबार दुर्वासा जब पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने एक विद्याधरी के हाथ में कल्पवृक्ष के फूलों की माला देखी। ऋषि के माँगने पर विद्याधरी ने वह माला आदरपूर्वक उन्हें सौंप दी। उस माला को धारण कर वे पृथ्वी पर घूमने लगे। उन्होंने ऐरावत पर घूमते हुए इन्द्र को देखा तो वह माला उनके ऊपर फेंक दी। इन्द्र ने उसे 'प्रसाद' के रूप में स्वीकार न कर पृथ्वी पर फेंक दी। इस पर क्रुद्ध होकर दुर्वासा ने उन्हें श्रीहीन हो जाने का शाप दे दिया। इसी के बाद दैत्यों ने देवों के साथ युद्ध कर सब कुछ जीत लिया।

इन्द्र सहित सभी देव ब्रह्मा के पास गये, जहाँ ब्रह्मा ने उन्हें विष्णु के पास चलने का निर्देश किया। सभी देव क्षीरसमुद्र के उत्तरी तट पर पहुँचे और उन्होंने विष्णु की स्तुति की। प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने क्षीरसागर का मन्थन करने का उद्योग बतलायाः-

तेजसो भवतां देवाः करिष्याम्युपबृंहणम्।
वदाम्यहं यत्क्रियतां भवद्भिस्तदिदं सुराः॥७६॥
आनीय सहिता दैत्यैः क्षीराब्धौ सकलौषधीः।
प्रक्षिप्यात्रामृतार्थं ताः सकला दैत्यदानवैः॥

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्॥७७॥
मथ्यताममृतं देवाः सहाये मय्यवस्थिते॥७८॥
सामपूर्वं च दैतेयास्तत्र साहाय्यकर्मणि।
सामान्यफलभोक्तारो यूयं वाच्या भविष्यथ॥७९॥

इस प्रकार समुद्र-मन्थन प्रारम्भ हुआ। इससे सर्वप्रथम 'सुरभि'- कामधेनु की उत्पत्ति हुई। इसके बाद वारुणी, पारिजात, अप्सरा, चन्द्रमा, विष, धन्वन्तरि, लक्ष्मी एवं अमृत उत्पन्न हुए। अमृत उत्पन्न होने पर असुरों ने उसे छीन लिया। तब भगवान् विष्णु ने अपनी माया से असुरों को माहित कर स्त्री रूप में प्रकट होकर दानवों से उस अमृत भरे घट को लेकर इन्द्र आदि देवताओं को पिला दिया। अमरत्व को पाकर देवों ने दैत्यों को परास्त कर दिया।

अग्नि-पुराण

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - हालाहल विष, वारुणी, पारिजात, कौस्तुभ, कामधेनु, अप्सराएँ, लक्ष्मी, धन्वन्तरि तथा अमृत)

अग्नि-पुराण के पूर्वभाग के तृतीय अध्याय में कूर्मावतार-कथा-वर्णन के क्रम में समुद्र-मन्थन की संक्षिप्त कथा है। यहाँ भी विष्णु-पुराण के अनुरूप दुर्वासा के शाप से श्रीहीन हुए इन्द्र द्वारा विष्णु की स्तुति के उपरान्त समुद्र-मन्थन के प्रस्ताव का उल्लेख हुआ है। इस स्थल पर सबसे पहले हालाहल विष के उत्पन्न होने का वर्णन आया है। इसके बाद वारुणी, पारिजात कौस्तुभ कामधेनु, दिव्य अप्सराएँ, लक्ष्मी, धन्वन्तरि तथा अमृत की उत्पत्ति का वर्णन है। शेष कथा में कोई भिन्नता नहीं है।

भागवत-महापुराण

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - 'हालहला' नामक विष, कामधेनु, उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभ मणि, अप्सरा, लक्ष्मी एवं वारुणी, धन्वन्तरि, अमृत)

भागवत के अष्टम स्कन्ध की अध्याय सं. 6 से 9 तक चार अध्यायों में समुद्र मन्थन की विस्तृत कथा है। एक बार जब दैत्यों के राजा बलि ने देवों को जीत कर तीनों लोकों पर अधिकार कर लिया था तब सभी देव भगवान् विष्णु के पास गये और उनकी स्तुति की। प्रसन्न होकर भगवान् ने दैत्यों के साथ मिलकर समुद्र-मन्थन करने का आदेश किया कि उससे निकलने वाले अमृत का पान कर लेने पर सभी अमर हो जाते हैं अतः क्षीरसागर में घास, तिनका, लताएँ और औषिधियाँ डालकर मन्दराचल की मथानी और वासुकि नाग की नेती बनाकर समुद्र का मन्थन करें इस कार्य में दैत्यगण केवल क्लेश और श्रम पायेंगे, जबकि देवों को सारे फल मिलेंगे-

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम्।
यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरोभवेत्॥२१॥
क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्॥२२॥
सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः।
क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः॥२३॥ (भागवतः 8। 6)

भगवान् ने सारी बातें बतला दी थीं कि सबसे पहले कालकूट निकलेगा, किन्तु उससे देवगण

डरें नहीं। सब कुछ तय हो जाने पर इन्द्रादि सभी देव निःशस्त्र होकर बलि के पास गये और समुद्र-मन्थन का प्रस्ताव रखा। दैत्यराज बलि ने भी देवताओं का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। सब मिलकर समुद्र-मन्थन के लिए उद्योग करने लगे। देवों और दानवों ने मिलकर मन्दराचल पर्वत को उखाड़ लिया, किन्तु उसे समुद्र तट पर ले जाने के क्रम में गुरुतर भार के कारण सँभाल नहीं सके और अनेक देव और दानव काल कवलित हो गये। तब देवों की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने गरुड़ पर मन्दराचल को रखा और समुद्र तट पर पहुँचा दिया।

इसके बाद देवताओं ने अमृत का प्रलोभन देकर नागराज वासुकि को नेती बनने के लिए राजी करा लिया। सर्वप्रथम देवतागण नागराज के मुख की ओर से पकड़कर पर्वत को चलाने लगे। बाद में दैत्यों का यह तर्क कि पूँछ अशुभ अंग होता है सुनकर देवतागण ही पूँछ की ओर आ गये और मन्थन करने लगे। पर्वत के नीचे कोई आधार नहीं होने के कारण वह समुद्र में डूबने लगा तब भगवान् विष्णु ने कमठ (कच्छप - कछुआ) के रूप में अपने पृष्ठ पर पर्वत को धारण किया और सहस्रबाहु के रूप में भगवान् विष्णु ने ही पर्वत को ऊपर से थाम लिया। समुद्र-मन्थन के क्रम में नेती बने वासुकि को कष्ट न हो, इसलिए भगवान् निद्रा के रूप में नाग में प्रवेश कर गये थे, फिर भी श्रम के कारण वासुकि के नेत्र मुख एवं श्वास से विष की ज्वाला निकलने लगी जिससे दानव निस्तेज होते गये। इसे शान्त करने के लिए भगवान् की प्रेरणा से शीतल वायु बहने लगी और वर्षा होने लगी।

समुद्र-मन्थन करते करते सर्वप्रथम 'हालहला' नाम का विष निकला-

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद् विषं
महोल्वणं हालहलाह्वमग्रतः।
सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्
तिमि-द्विप-ग्राह तिमिङ्गिलाकुलात्॥

इस विष से बचने का कोई उपाय न देखकर सब भगवान् शंकर की शरण में गये। भगवान् शंकर ने प्रजा की रक्षा के लिए विष को अपने कण्ठ में धारण कर लिया। विष से त्राण पाकर देवों ने शंकर भगवान् की स्तुति की।

स्वस्थ होकर सभी देव-दानव-पुनः समुद्र-मन्थन में लग गये। तब कामधेनु, उच्चैश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभ मणि, अप्सरा, लक्ष्मी एवं वारुणी ये रत्न प्रकट हुए। अमृत के लिए पुनः समुद्र-मन्थन आरम्भ हुआ। तब अमृत कलश लिए हुए भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए-

अथोदधेर्मथ्यमानात् काश्यपैरमृतार्थिभिः।
उदतिष्ठन् महाराज पुरुषः परमाद्भुतः॥३१॥
दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः॥३२॥
पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः।
स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः॥३३॥
अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद् वलयभूषितः।
स वै भगवतः साक्षाद् विष्णोरंशांशसम्भवः॥३४॥
धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक्।

तमालोक्य सुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम्॥३५॥
लिसन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाहरन्॥ (भागवतः 8। 8)

इस प्रकार असुरगण उस कलश को छीन ले गये, किन्तु अमृत के बटवारे को लेकर असुरों में विवाद हो गया। कुछ असुरों ने सनातन धर्म की दुहाई देकर देवों को भी यज्ञभाग देने की बात कहने लगे। इसी समय भगवान् विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण किया। इस रूप पर मोहित होकर असुरों ने उन्हें अमृत-कलश सौंप कर वितरण करने का आग्रह किया। मोहिनी ने शर्त करा ली कि मैं जो भी उचित या अनुचित करूँ, सबको स्वीकार करना होगा।

मोहिनी के आदेश पर सबने एक दिन का उपवास किया। अगले दिन देव-दानव सभी नित्य कर्म सम्पन्न कर सभा-मण्डप में कुशासन पर बैठ गये। मोहिनी के निर्देश पर देवों और दानवों की पंक्तियाँ अलग कर ली गयी।

जिस समय देवों की पंक्ति में अमृत-वितरण हो रहा था, उसी समय राहु देवताओं का वेष बनाकर उनकी पंक्ति में जा बैठा और अमृत पी लिया। चन्द्रमा और सूर्य राहु को पहचान गये। तुरत भगवान् विष्णु ने चक्र से उसका सिर काट डाला। उस समय तक अमृत गला में पहुँच चुका था, अतः सिर अमर हो गया, जिसे ब्रह्मा ने 'ग्रह' बना डाला किन्तु धड़ निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पड़ा। वही राहु ग्रह ग्रहण के समय वैर भाव से सूर्य और चन्द्र को ग्रास बनाता रहा है।

इधर जब सभी देवता अमृत पी चुके तब भगवान् विष्णु ने बड़े बड़े दैत्यों के समक्ष अपना मोहिनी रूप त्याग कर वास्तविक रूप प्रकट किया। अमृत से वंचित असुर गण शस्त्रास्त्र से सज्जित होकर देवताओं के साथ युद्ध करने का उद्योग करने लगे और देवासुर संग्राम आरम्भ हुआ।

मत्स्य-पुराण

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - चन्द्रमा, लक्ष्मी, वारुणी, कौस्तुभ, पारिजात, धूम-सर्प-कालकूट विष, गजेन्द्र (ऐरावत) अश्व (सूर्य का), छत्र, कुण्डल, पारिजात, धन्वन्तरि, अमृत)

मत्स्य पुराण के 249 से 251 वें अध्याय तक समुद्र-मन्थन एवं अमृत की उत्पत्ति का प्रसंग है। शेष कथा महाभारत के समान है किन्तु यहाँ राजा बलि को दानवों की ओर से प्रस्तुत किया गया है-

मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम्।
दानवेन्द्रो बलिः स्वामी स्तोककालं निवेश्यताम्॥ (२४९ । १५)

यहाँ भी देवताओं द्वारा अमृत पीने के पूर्व देव-दानवों के बीच अमृत कलश की छीना-झपटी या जयन्त के द्वारा अमृत कलश लेकर भागने और अमृत बिन्दु छलकने की कथा नहीं है।

पद्म-पुराण

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - कालकूट, दरिद्रा, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, धन्वन्तरि, पारिजात, सुरभि, चन्द्रमा, लक्ष्मी, तुलसी, अमृत - ब्रह्मखण्ड- 8-10)

पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड के चतुर्थ अध्याय में श्लोक संख्या- 1 से 79 तक लक्ष्मी की उत्पत्ति के आख्यान के सन्दर्भ में समुद्र-मन्थन का प्रसंग आया है। यहाँ दैत्यों की ओर से राजा बलि का उल्लेख नहीं है किन्तु अमृत कलश के साथ धन्वन्तरि की उत्पत्ति का समान उल्लेख यहाँ भी हुआ है।

तत्तो धन्वन्तरिर्जातः श्वेताम्बरधरः स्वयम्।
बिभ्रत् कमण्डलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः।
ततः स्वस्थमनस्कास्ते वैद्यराजस्य दर्शनात्॥५७॥

यहाँ आगे कथा है कि जब दैत्य धन्वन्तरि के हाथ से यह कलश छीन लिया तब भगवान् विष्णु ने मोहिनी स्त्री का रूप धारण कर दानवों को मोहित करते हुए कहा कि मैं तुम्हारे घर जाकर तुम्हारे वश में रहूँगी। इसपर दैत्यों ने मोहित होकर अमृत घट उन्हें सौंप दिया। भगवान् विष्णु भी दानवों से वह अमृत लेकर देवताओं को सौंप दिया। देवताओं ने अमृत पीकर अमरत्व प्राप्त कर दानवों पर विजय पायी।

पद्म-पुराण में ही ब्रह्म-खण्ड के 8 से 10 अध्याय तक समुद्र मन्थन की कथा है। कथा अत्यन्त संक्षिप्त है किन्तु समुद्र-मन्थन के आरम्भ में सबसे पहले विष उत्पन्न होने की तिथि एकादशी बतलायी गयी है (9/3) आगे लक्ष्मी की उत्पत्ति द्वादशी के दिन होने का उल्लेख है (10/2) यहाँ इसी समुद्र मन्थन से तुलसी की भी उत्पत्ति का उल्लेख है। यहाँ अमृत वितरण की एक नयी कथा है कि देवताओं ने सभी राक्षसों को मार-पीट कर भगा दिया और तब निश्चित होकर अमृत पीने बैठे। विष्णु की आज्ञा से सभी देवता आपस में ही लड़ने लगे। एक ने कहा- 'आप हमें अमृत दें तो दूसरे ने कहा हम नहीं दे सकते, हम नहीं दे सकते।

अथ ते चासुरान् सर्वान् जघ्नुः सर्वे बलाधिकाः।
सर्वे ते क्रन्द्रमानाश्च गताश्चैव दिशो दश॥१५॥
सुधां तत् खादितुं चक्रु र्देवाः पंक्तिं यथाक्रमम्।
श्रीविष्णोराज्ञया सर्वे चोचुश्चैव परस्परम्॥१६॥
त्वं च देहि त्वं च देहि त्वं च देहीति चाब्रुवन्।
न शक्तोऽस्मि न शक्तोऽस्मि न शक्तोऽस्मि चाब्रुवन्॥१७॥ (अध्याय- 10)

इसके बाद विष्णु ने स्त्रीरूप धारण कर स्वर्णपात्र में अमृत परोस दिया। अन्य कथाओं के समान ही यहाँ राहु एवं केतु की कथा आगे दी गयी है।

यहाँ इसी समुद्र-मन्थन से लक्ष्मी की बड़ी बहन के रूप में अलक्ष्मी (दरिद्रा) की उत्पत्ति की रोचक कथा है। जब अलक्ष्मी की उत्पत्ति हुई तो उसने अपना स्थान माँगा। इसपर देवताओं ने कहा कि जहाँ पति-पत्नी के बीच कलह होता हो, जहाँ देवों-पितरों के प्रति श्रद्धा न हो, जिस घर के लोग विना पैर धोये भोजन करें, बालू, नमक, कोयला आदि से दातून करें, वैसा घर तुम्हारे लिए है। यहाँ गृहस्थों के लिए निषिद्ध कार्यों का वर्णन किया गया है। लक्ष्मी की उत्पत्ति के बाद जब उनके विवाह की बात चली तो लक्ष्मी ने कहा कि जबतक मेरी बड़ी बहन अलक्ष्मी कुमारी रहेगी तब तक मेरा विवाह कैसे होगा! इसपर विष्णु ने उद्दालक ऋषि से अलक्ष्मी का विवाह करा दिया।

स्कन्द-पुराण

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - हलाहल, चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ, मदिरा, विजया, भृंगी, लशुन, गृंजन (प्याज), धतूर का फल, पुष्पक, लक्ष्मी, धन्वन्तरि, अमृत)

स्कन्दपुराण के माहेश्वर खण्ड के अन्तर्गत केदारखण्ड के 9-12 अध्याय में समुद्र-मन्थन की सबसे विस्तृत कथा आयी है। यहाँ समुद्र-मन्थन की भूमिका दी गयी है कि एकबार इन्द्र स्वर्ग

में सभासीन थे। उसी समय देवगुरु बृहस्पति सभा में पहुँचे किन्तु इन्द्र भी उनके सम्मान में उठकर खड़े नहीं हुए उन्हें आसन भी नहीं दिया गया। वे अपमान का अनुभव कर वहाँ से चले गये।। बृहस्पति के चले जाते ही सभी देवताओं की मति मारी गयी वे 'विमनस्क' हो गये। जब सभा में गन्धर्वों ने गायन समाप्त किया तब सभी बृहस्पति को खोजने लगे। इन्द्र स्वयं उनके आवास पर पहुँचे तो वे वहाँ भी नहीं मिले। उनकी पत्नी तारा ने भी अपनी अनभिज्ञता बतलायी। इधर इन्द्र सहित सब कान्तिहीन हो गये। स्वर्ग में अनिष्ट होने लगे।

स्वर्ग की यह खबर पाकर पाताल के राजा बलि ने स्वर्ग पर चढ़ाई कर दी; देवताओं को भगाकर स्वर्ग लूट लिया। ऐरावत, उच्चैःश्रवा, रत्न आदि लूट लिए गये, किन्तु पाताल ले जाने के क्रम में ये सारी वस्तुएँ समुद्र में गिर गयीं, जिससे दैत्यगण भी दुःखी हुए। इसपर दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने उन्हें कहा कि एक सौ अश्वमेध करने से ही स्वर्ग का राज्य मिल सकता है।

इधर इन्द्र अपनी दुःस्थिति के समाधान के लिए ब्रह्मा के पास पहुँचे और उनके निर्देश पर सभी देवों के साथ विष्णु के निकट गये। भगवान् विष्णु ने कहा कि गुरु के अपमान के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई है, और इस संकट से उबरने के लिए आपको दैत्यों के साथ मित्रता कर लेनी चाहिए।' भगवान् विष्णु के निर्देश पर इन्द्र पाताललोक की राजधानी अमरावती पहुँचे। वहाँ इन्द्रसेन अपनी सेना लेकर इन्हें घेर लिया और इन्द्र को मार डालने के लिए उद्यत हुआ। तब नारद मुनि के बीच-बचाव करने पर इन्द्र की जान बची। इसके बाद, नारद के माध्यम से बलि से वार्ता होने पर समुद्र-मन्थन कर गिरी हुई वस्तुओं को प्राप्त करने पर सहमति बनी।

इसके देवों और दैत्यों ने साथ मिलकर समुद्र-मन्थन प्रारम्भ किया। सबसे पहले वे मन्दराचल के पास गये और मथानी बनने की प्रार्थना की। मन्दराचल ने इन्द्र से कहा कि मेरे पंख तो आपने काट दिये हैं तब मैं कैसे क्षीरसागर तक पहुचूँगा। यह सुनकर देवों और दैत्यों ने पर्वत को उखाड़ लिया और उसे वे ले जाने लगे। पर्वत भारी था। वे सँभाल नहीं पा रहे थे इसलिए कितने ही दैत्य और देवता कुचल कर मर गये। तब उन्होंने विष्णु की प्रार्थना की। प्रसन्न होकर भगवान् ने पर्वत को समुद्र के उत्तर तट पर पहुँचा दिया। वासुकि नाग का भी आह्वान किया गया। पहले बिना आधार बनाये मन्थन आरम्भ हुआ तो मन्दर पर्वत रसातल चला गया। बाद में जब कूर्म रूपी विष्णु को आधार बनाया गया तो कूर्म के पृष्ठ भाग पर पर्वत के घर्षण से अग्नि की ज्वाला निकलने लगी और हलाहल बिष निकला। तब नारद ने कहा कि मन्थन को रोककर पहले भगवान् शिव की प्रार्थना करें। नारद की बात किसी ने नहीं मानी। बाद में जब विष निकला तब तो तीनों लोक जलने लगे। तब ब्रह्मा आदि सब व्याकुल होकर भगवान् शिव की शरण में पहुँचे तब भगवान् शिव ने उस हलाहल का पान कर तीनों लोकों की रक्षा की।

पुनः मन्थन आरम्भ हुआ। चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ आदि अनेक रत्नों के साथ मदिरा, विजया, भृंगी, लशुन, गृंजन (व्याज), धतूर का फल, पुष्पक, आदि निकले। तब लक्ष्मी उत्पन्न हुई। अन्त में अमृत कलश लिये हुए भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए।

स्कन्दपुराण के इस स्थल पर आगे की कथा विस्तार से कही गयी है। धन्वन्तरि का प्राकट्य होते ही असुरगण उस कलश को छीनकर पाताल की ओर चले तब देवगण भी उनसे युद्ध करने की ठानकर उनके पीछे चले।

देवताओं को अपने पीछे-पीछे आते देखकर राजा बलि ने कहा कि हमलोग केवल अमृत से ही सन्तुष्ट हैं आपसब स्वर्ग लौट जायें। इस पर देवगण घबड़ाकर भगवान् विष्णु के पास पहुँचे। भगवान् ने अमृत कलश वापस लाने का आश्वासन दिया। इसके बाद भगवान् मोहिनी रूप धारण कर दैत्यों से भी आगे पहुँच गये। अब सारे दैत्य आपस में अमृत के लिए विवाद करने लगे। राजा बलि ने मोहिनी को देखकर अमृत बाँटने का आग्रह किया तो मोहिनी ने भी स्त्रियों के अवगुणों को गिनाकर अपनी वाणी से मोहित कर बलि के निश्चय को और दृढ़ करा दिया।

तब मोहिनी ने कहा कि आज आप सब उपवास कर 'अमृताधिवास' करें। कल प्रातःकाल इसी अमृत से पारणा करेंगे। मोहिनी की बात मानकर सबने वही पर घट स्थापित कर रात बिताने का निश्चय किया। मय दानव को उसी स्थान पर महल बनाने का आदेश किया गया। सबने रात्रि में जागरण किया। प्रातःकाल उषःकाल में ही स्नानादि कर बलि के साथ अमृत-पान के लिए पंक्तिबद्ध बैठ गये। मोहिनी के रूप में भगवान् विष्णु ने अमृत-कलश उठा लिया। इसी समय सभी देवता भी वहाँ उपस्थित हो गये तब मोहिनी ने राजा बलि से कहा कि ये लोग अतिथि के रूप में आये हुए हैं अतः इन्हें भी अमृत पान करावें। जो केवल अपना ही पेट भरते हैं वे क्लेश के भागी होते हैं। इसपर राजा बलि ने देवताओं को भी बुला लिया। सब पंक्तिबद्ध होकर बैठ गये। तब मोहिनी ने कहा कि पहले अतिथि का सत्कार होना चाहिए, ऐसा वेद का कथन है। इसलिए आप शीघ्र कहें कि पहले मैं किन्हें दूँ? राजा बलि ने कहा कि आपकी जो इच्छा हो। तब मोहिनी ने पहले देवताओं की ओर से परोसना प्रारम्भ किया। इन्द्र के साथ देवगण, यक्ष, गन्धर्व आदि सब अमृत-पान करने लगे। इधर दैत्यगण चिन्ता मग्न होकर ध्यानस्थ हो गये।

दैत्यों में से राहु और केतु दोनों ने विचार कर देवता का रूप धारण किया और वे देवों की पंक्ति में जाकर बैठ गये जिसे सूर्य और चन्द्रमा ने देख लिया। उन्होंने भगवान् विष्णु से ये बातें बतला दी। भगवान् ने चक्र से राहु और केतु के सिर काट डाले। राहु का सिर आकाश में उड़ गया और धड़ वाला भाग पृथ्वी पर लोटने लगा, जिसे बड़ी तबाही मची तब अन्त में भगवान् शिव ने उसे अपने पैर तले दबा दिया। वह स्थान 'महालय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। केतु धूम के रूप में आकाश में विलीन हो गया। इस तरह अशान्ति फैल जाने पर मोहिनी रूप भगवान् विष्णु भी चन्द्रमा को अमृत कलश थमाकर तिरोहित हो गये।

स्कन्दपुराण, आवन्ती खण्ड : अवन्ती क्षेत्र माहात्म्य

(**उत्पन्न रत्नों के नाम** - कौस्तुभ मणि, पारिजात, सुरा, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, अमृत, रम्भा, सारंग धनुष, पाञ्चजन्य शंख, महापद्म निधि और हलाहल विष)

इस खण्ड में 44वें अध्याय में भी अवन्ती के पद्मावती सरोवर के वर्णन क्रम में समुद्र-मन्थन का प्रसंग आया है। यहाँ मेरु पर्वत को ही मथनी बनाने का उल्लेख हुआ है तथा सर्वप्रथम लक्ष्मी की उत्पत्ति बतलायी गयी है। लक्ष्मी जब उत्पन्न हुई तब देवता और दैत्य आपस में लड़ने लगे। तब नारदजी ने दैत्यों को समझाया कि यह लक्ष्मी इसी महाकाल वन में रहेगी। सागर में तो और अनेक रत्न हैं आपलोग मन्थन करें। अब जो भी रत्न निकलेंगे, हम आपको दे देंगे। इस पर सभी दैत्य समुद्र मन्थन करने लगे तब कौस्तुभ मणि, पारिजात सुरा, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, अमृत एवं रम्भा की उत्पत्ति हुई। इसके बाद सारंग धनुष तथा पाञ्चजन्य शंख

निकले। तब महापद्म निधि और हलाहल विष की उत्पत्ति हुई। इन चौदहों रत्नों को लेकर सब माहेश्वर वन पहुँचे और आपस में लड़ने लगे। तब नारद के द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु वहाँ मोहिनी के रूप में पहुँचे। वस्तुओं का बटवारा करने के क्रम के इन्द्र ने फुरती से सुरा कलश के बदले अमृत कलश अपने हाथ में ले लिया और देवताओं को दे दिया। इसी बीच राहु देवता का रूप धारण कर देवताओं के बीच बैठ गया और उसने अमृत पी लिया। यह जानकर भगवान् विष्णु ने चक्र से उसका शिर काट डाला लेकिन अमृत का स्पर्श हो जाने के कारण वह मरा नहीं।

गुरु गोबिन्द सिंह

समुद्र-मन्थन की कथा गुरु गोबिन्द सिंह के 'बचित्र नाटक' में भी आयी है। 'अथ छीर समुद्र मथन चउदह रत्न कथन' नामक पाठ में उन्होंने अपने पूर्ववर्त्ती कवि श्याम के कवित्त का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि दैत्यों ने बासुकि के मुख की ओर तथा देवों ने पूँछ की ओर पकड़कर सागर मन्थन किया जिससे चौदह रत्न निकले-

निकस्यो धनु साइक[1] सुद्ध सितं मदु[2] पान कद्यो घट मद्य मतं।
गज[3] बाज[4] सुधा[5] लक्ष्मी[6] निकसी। घन मो मनो विद्युल्लता बिगसी॥
कलपाद्रुम[7] माहुर[8] अउ रंभा[9] जह मोहि रहै लख इंद्र सभा।
मणि कोसतकं[10] ससि[11] रूप सुभं जिह भज्जत दैत बिलोक जुधं।
निकसी गवराज[12] सुधेन भली जिह छीन लियो सहसास्र बली।

1. धनुष-बाण, 2. मदिरा, वारुणी, 3. ऐरावत हाथी, 4. उच्चैश्रवा घोड़ा, 5. अमृत, 6. लक्ष्मी, 7. कल्पद्रुम, 8. विष, 9. रंभा अप्सरा, 10. कौस्तुभ मणि, 11. चन्द्रमा, 12. कामधेनु।

यहाँ बारह रत्नों के ही नाम हैं। इसे स्पष्ट करते हुए गुरु गोबिन्द सिंह ने कहा है कि ये नाम श्याम कवि के गिनाये हुए हैं, इन्हें कम समझकर लोग मेरी निंदा न करें। गुरुजी ने बतलाया है कि धनुष-बाण, नन्दी एवं खड्ग भी सागर से निकले और शिव का त्रिशूल, बड़वानल, कपिल मुनि तथा धन्वन्तरि चौदहवें रत्न के रूप में निकले।

धनु सारंग नंदग खग्ग भणं जिन खंडि करै गन दइत रणं।
शिव सूल वड़वानल कपल मुनं त धनंतर चउदसवो रतनं॥

यहाँ पर जोक, हारिड़, हकीक, मधु आदि उपरत्नों के भी समुद्र से उत्पन्न होने का उल्लेख है तथा धातुओं, उपधातुओं की भी सूची दी गयी है। यहाँ एक विशेष बात कही गयी है कि समुद्र से जो अश्व निकला वह सूर्य को दिया गया।

'बचित्र-नाटक' में इस पाठ के बाद 'महामोहिनी अवतार कथनं' में भी समुद्र-मन्थन की अग्रिम कथा है जिसमें कहा गया है कि भगवान् विष्णु ने चन्द्रमा, मणि एवं लक्ष्मी स्वयं ले लिया और चौबीस अवतारों में से महामोहिनी के रूप में पंचम अवतार लेकर देवों को अमृत पिला दिया।

इस प्रकार भगवान् के सत्तरहवें अवतार के रूप में धन्वन्तरि को रखा गया है। यहाँ भी समुद्र-मन्थन की अति संक्षिप्त कथा है।

❖

'सूरसागर' का समुद्र-मन्थन-प्रसंग

(मध्यकालीन सन्त कवियों की परम्परा में 'सूर के समान' समादृत सूरदास ने 'सूर-सागर' में दशावतार वर्णन के क्रम में 'कूर्मावतार' का चरित बखानते हुए 'समुद्र-मन्थन' की विस्तृत कथा गायी है, जो यहाँ संकलित किया गया है। यह चौदह रत्नों के नाम स्पष्ट हैं।)

(**उत्पन्न रत्नों के नाम**- हलाहल, चंद्रमा, कामनाधेनु, अप्सरा, परिजातक, धनुष, अस्व, गज, संख, कौस्तुभमनी, लच्छमी, धन्वंत्रि, सुरा और अमृत)

राग मारू।
सुरनि हित हरि कछप रूप धार्‌यौ।
मथन करि जलधि अमृत निकार्‌यौ।।
चतुर्मुख त्रिदसपति विनय हरि सौं करी बलि असुर सौं सुरनि दु:ख पायौ।
दीनबंधू दयाकरन असरन सरन मंत्र यह तिनहिँ निज मुख सुनायौ।।
बासुकी नेति अरु मंदराचल रई कमठ मैं आपनी पीठि धारौं।
असुर सौं हेत करि करौ सागर मथन तहाँ तैं अमृत कौं पुनि निकारौ।।

रतन चौदह तहाँ तैं प्रगट होहिँ तब असुर कौं सुरा तुम्हैं अमृत प्याऊँ।
जीतिहौं तब असुर महा बलवंत कौं मरैं नहिँ देवता यौं जिवाऊँ।।
इंद्र मिलि सुरनि बलि पास आए बहुरि उन कह्यौ कहौ किहिँ काज आए।
त्रिदसपति समुद के मथन के बचन जो सो सकल ताहि कहिकै सुनाए।।

बलि कह्यौ बिलँव अब नैकु नहिँ कीजियै मंदराचल अचल चले धाई।
दोउ इक मंत्र ह्वै जाइ पहुँचे तहाँ कह्यौ अब लीजिये इहिँ उचाई।।
मंदराचल उपारत भयौ स्रम बहुत बहुरि लै चलन कौं जब उठायौ।
सुर असुर बहुत ता ठौरहीं मरि गए दुहुनि कौ गर्व यौं हरि नसायौ।।

तब दुहुनि ध्यान भगवान कौ धरि कह्यौ बिनु तुम्हारी कृपा गिरि न जाई।
बाम कर सौं पकरि गरुड़ पर राखि हरि छीर कैं जलधि तट धर्‌यौ ल्याइ।।
कह्यौ भगवान अब बासुकी ल्याइयै जाइ तिन बासुकी सौं सुनायौ।
मानि भगवंत आज्ञा सो आयौ तहाँ नेति करि अचल कौं सिंधु नायौ।।

मंदराचल समुद माहिं बूड़न लग्यौ तब सबनि बहुरि अस्तुति सुनाई।
कूर्म कौ रूप धरि धर्‍यौ गिरि पीठि पर सुर असुर सबनि कैँ मन बधाई।।
पूँछ कौँ तजि असुर दौरिकै मुख गह्यौ सुराने तब पूँछ की ओर लीन्ही।
मथत भए छीन तब बहुरि बिनती करा श्रीमहाराज निज सक्ति दीन्ही।।

भयौ **हलाहल** प्रगट प्रथमहीँ मथत जब रुद्र कैँ कंठ दियौ ताहि धारी।
चंद्रमा बहुरि जब मथत आयौ निकसि सोउ करि कृपा दीन्हौ मुरारी।
कामनाधेनु पुनि सप्तरिषि कौँ दई लई उन बहुत मन हर्ष कीन्हे।
अप्सरा परिजातक धनुष अस्व गज स्वेत ये पाँच सुरपतिहिँ दीन्हे।।

संख कौस्तुभमनी लई पुनि आप हरि **लच्छमी** बहुरि तहँ दह दिखाई।
परम सुंदर मनौ तड़ित है दूसरी कमल की माल कर लियेँ आई।।
सकल भूषन मनिनि के बने सकल अँग बसन बर अरुन सुंदर सुहायौ।
देखि सुर असुर सब दौरि लागे गहन कह्यौ मैँ बर बरौँ आप भायौ।।

जो चहै मोहिँ मैँ ताहि नाहीँ चहौँ असुर को राज थिर नाहिँ देखौँ।
तपसियनि देखि कह्यौ क्रोध इनमैँ बहुत ज्ञानियनि मैँ न आचार पेखौँ।।
सुरनि कौँ देखि कह्यौ ये पराधीन सब देखि बिधि कौ कह्यौ यह बुढ़ायौ।
चिरंजीवीनि कौँ देखि कह्यौ निडर ये लोक तिहुँ माहिँ कोउ चित न आयौ।।

बहुरि भगवान कौँ निरखि सुंदर कह्यौ इन माहिँ गुन हैँ सुभाए।
पै न इच्छा इन्हैँ है कछू बस्तु की अरु न ये देखि कै मोहिँ लुभाए।
कबहुँ कियेँ भक्ति हू के न ये रीझहीँ कबहुँ कियेँ बैर के रीझि जाहीँ।
और गुन चाहिऐ सो सकल हैं इन्हैं डारि दई माल कहि गरे माहीं।।

हरि कह्यौ मम हृदय माहिँ तू रहि सदा सुरनि मिलि देव दुंदुभि बजाई।
धन्य धन्य कह्यौ पुनि लच्छमी सौँ सबनि सिद्ध गंधर्व जय ध्वनि सुनाई।।
बहुरि **धन्वंत्रि** आयौ समुद सौँ निकसि **सुरा** अरु **अमृत** निज संग लायौ।
भयौ आनंद सुर असुर कौँ देखि कै असुर सब अमृत करि बल छिनायौ।।

सुरनि भगवान सौँ आनि बिनती करी असुर सब अमृत लै गए छिनाई।
कह्यौ भगवान चिंता न कछु मन धरौ मैँ करौँ अब तुम्हारी सहाई।।
परसपर असुर तब जुद्ध लागे करन होइ बलवंत सोइ लै छिनाई।
मोहिनी रूप धरि स्याम आए तहाँ देखि सुर असुर सब रहे लुभाई।।

आइ असुरनि कह्यौ लेहु यह अमृत तुम सबनि कौँ बाँटि मेटौ लराई।
हँसि कह्यौ नहीँ हम तुम्हैँ कुछ मित्रता बिना बिस्वास बाँट्यौ न जाई।।
कह्यौ तुम बाँटि पर महैँ बिस्वास है देहु तुम बाँटि जो धर्म होई।
कह्यौ सब सुर असुर मथन कीन्ह्यौ जलधि सबनि देउँ बाँटि है धर्म सोई।।

कह्यौ जो करौ सो हमैँ परमान है असुर सुर पाँति करि तब बिठाई।
असुर दिसि चिते मुसुक्याइ मोहे सकल सुरनि कौँ अमृत दीन्हौ पियाई।
राहु ससि सूर के बीच मैँ बैठि कै मोहिनि सौँ अमृत माँगि लीन्ह्यौ।।
राहु सिर केतु धर कौ भयो तबहि तैँ सूर ससि कौँ सदा दु:खदाई।

करत भगवान रच्छा जो ससि सूर की होत है नित सुदरसन सहाई।।
करि अँतरधान हरि मोहिनी रूप कौँ गरुड़ असवार ह्वैँ तहाँ आए।
असुर चकित भए गई वह नारि कहँ सुर असुर जुद्ध हित दोउ धाए।।
सुरनि की जीति भई असुर मारे बहुत जहाँ तहँ गए सबही पराई।
सूर प्रभु जिहिँ करै कृपा जीतै सोई बिनु कृपा जाइ उद्यम बृथाई।।8।।

❖

THE CHURNING OF THE OCEAN.

(Extracted from the Mahabharata)

Trans. by R.T.H. Griffith

[Quoted from the book "Specimens of old Indian poetry", edited by Ralph Thomas Hotchkin Griffith, Member of the Royal Asiatic Society and Boden Sanskrit scholar in the University of Oxford.]

[The following wild tale, extracted also from the Mahabharata, that inexhaustible storehouse of mythological and historical legends, relates the recovery of the Amrit, or Drink of Immortality, which had been lost, together with other treasures, in the waters of the Deluge, of which the Hindus have preserved a tradition, resembling in several remarkable instances the Hebrew account of that event.]

"For council deep they all appear'd,
The Dwellers of the Sky,
Where Meru, King of Mountains, rear'd
His pinnacles on high ;
How glorious in the nations' sight
Flash'd forth his golden rays,
And scorn'd the Sun's unclouded light
With yet more dazzling blaze !
There trees and herbs and countless flowers
Of heavenly virtue grew,
And through the cool and shady bowers
Sang birds of gorgeous hue.
They met for solemn council there
The Wise Ones, and the Strong,
" Say, how may we our loss repair—
The Amrit, mourn'd so long 1"
Then Vishnu in his wisdom cried,
" Ye mighty Gods, arise ! Deep hid beneath the whelming tide
The Heavenly Nectar lies;
Untiringly in ceaseless whirl
Churn ye the vasty Ocean,
And herbs of power and jewels hurl

Into the wild commotion.
" Vex ye the surges in your strength,
Stir them with ceaseless toil,
So shall the troubled sea at length
Yield back the precious spoil."
He spake ; and swift at his behest
With eager might they strain
To tear up Mandara's haughty crest.
And heave him from the plain.
But all their power was defied
By the unshaken hill;
Vain every effort they applied,
Their strength was fruitless still.
" O great Lord Vishnu ! hear us now ! "
Thus pray'd the Heavenly Band, " O Brahma ! Hearer of the Vow !
Lay to thy mighty hand ! "
Then Brahma of the Lotus Eyes
And deep unsearche'd Mind,
And Vishnu, terrible and wise,
To their request inclined;
They bade Ananta, Serpent King,
Rise from his Ocean-home, That Hill of Glory down to fling
Far in the flashing foam.
Now wo to Mandara's mountain !
His days of pride are o'er ;
In woods, by gurgling fountain,
The sweet birds sing no more !
" Come, let us churn the Ocean ! "
Thus cried the Gods around— " For by the ceaseless motion
The Amrit will be found."
Then did the King of Waters crave
The wondrous task to share, " For he was strong beneath the wave
High Mandara's weight to bear." Then took the Gods that Hill of Pride
Their churning-stick to bej
A.nd for a turning-strap they tied
The great snake VasukL
Uniting with the Serpent King
Labour'd the Gods amain ;
^.surs and Surs, all strove to bring
The Amrit back again.

By the Snake's head Ananta stood,
And pull'd with matchless strength; The Gods beyond the moving flood
Dragg'd back his coiled length.
Then from the mouth of Vasuki
Roll'd clouds of smoke and flame, Like scorching storm-blasts furiously
The stifling vapours came. And ceaselessly a rain of flowers
From the fair mountain's brow Fell softly down in fragrant showers,
And veil'd the hosts below.
Like roaring of a tempest-cloud
The deafening thunder crash'd ; The sound of Ocean was as loud,
To furious raging lash'd ; Unnumber'd creatures of the Deep
Died in the troubled Sea; And thundering down from Mandara's steep
Fell many a lofty tree.
From "branches against branches dash'd
Rose the red flames on high, And flickering round the mountain flash'd
Like lightnings o'er the sky.
The dwellers of the ancient woods
Felt the remorseless power,
Rush'd vainly to the steaming floods
Scorch'd by the fiery shower;
Lions and elephants in herds
By blinding terror driven—
With scathed wings the beauteous birds
No more might soar to heaven;
But Indra on the toil and pain
Look'd pitying from on high,
And bade a cloud of gentle rain
Come softly down the sky.
Then from each wounded herb and tree
The precious balsam pour'd,
And milk-white roll'd the foaming Sea,
With wondrous juices stored.
" O Brahma ! weak and worn are We;
Hear us," they cried, " again, For ceaselessly and fruitlessly
We lash the furious main.
" Our souls are fainting, and our strength
Fails in the ceaseless strife,
O tell us, shall we gain at length
The drink of endless life 1" " Great Vishnu ! help the toiling band,"
The mighty Brahma said— And straightway at the high command

He promised matchless aid.
" To all I give resistless might
Who stir the foaming Sea ; Still in the glorious work unite,
Till ours the guerdon be."
And with one heart, and with one will,
They lash'd the raging Ocean,
And furious fast, and wilder still
Arose the fierce commotion.
Then lo! the Moon all cold and bright
Rose from the troubled Sea,
And following in her robes of light
Appear'd the beauteous Sri ;
The Heavenly Horse, and Sura* rose,
And Kaustubha, the Gem
Whose ever-beaming lustre glows
In Vishnu's Diadem.
Last of the train, Dhanwantari
To their glad sight was given, The Amrit in a bowl had he,
The Mystic Drink of Heaven. Then loud aud long a joyous sound
Rang through the startled sky ; " Hail to the Amrit, lost and found !"
A thousand voices cry.
But from the wondrous Churning steam'd
A Poison fierce and dread,
Burning like fire, where'er it stream'd
Thick noisome mists were spread ;
The wasting venom onwards went
And fill'd the Worlds with fear,
Till Brahma to their misery bent
His gracious pitying ear ;
And Siva those destroying streams
Drank up at Brahma's beck,—;
Still in thy throat the dark flood gleams,
God of the Azure Neck!

❖

---

footnote:

* Wine, personified.

कुम्भपर्व का शास्त्रीय स्वरूप

(ज्योतिषी पं. कुशेश्वर शर्मा कृत 'कुम्भपर्वनिर्णय')

हिन्दी अनुवाद एवं प्रस्तुति : पं. भवनाथ झा

मिथिला की विद्वत्-परंपरा पर्याप्त उर्वर रही है। धर्मशास्त्र के क्षेत्र में भी महर्षि याज्ञवल्क्य के काल से ही हमें पर्याप्त पुष्ट परंपरा का दर्शन होता है। इस बात के लिए अनेक प्रमाण है कि ईसा के आठवीं शती से लेकर 14वीं शती तक मीमांसा-दर्शन पर मिथिला क्षेत्र के विद्वानों का सर्वाधिकार रहा है। 12वीं शती से मिथिला में अनेक धर्मशास्त्री हुए हैं, जिन्होंने धर्मशास्त्र के विषयों पर निबन्धों के माध्यम से समाज का पथ-प्रदर्शन किया है। इनमें ग्रहेश्वर मिश्र, गणेश्वर मिश्र, श्रीदत्तोपाध्याय, गणेश्वर ठक्कुर, चण्डेश्वर ठक्कुर, रामदत्त ठक्कुर, हरिनाथोपाध्याय, पद्मनाभ, श्रीदत्त मिश्र, विद्यापति, इन्द्रपति, प्रंमनिधि ठाकुर, लक्ष्मीपति उपाध्याय, शंकर मिश्र, वाचस्पति मिश्र, वर्धमानोपाध्याय, म.म. महेश ठाकुर, पशुपति उपाध्याय, रुद्रधर उपाध्याय, नरसिंह ठाकुर, आदि अनेक अति प्रसिद्ध धर्मशास्त्री हुए है। आज भी अनेक ऐसे धर्मशास्त्रियों के ग्रन्थों के नाम उपलब्ध हैं, जिनकी पाण्डुलिपि भी उपलब्ध नहीं हैं। बाढ़ और अगलगी में अनेक ग्रन्थ विलुप्त हो गये, जो उपलब्ध भी हैं, उनमें से कई अप्रकाशित हैं और पाण्डुलिपि-ग्रन्थागारों की शोभा बढ़ा रहे हैं। ऐसे उर्वर क्षेत्र में वर्ष भर के व्रतों, त्योहारों और धार्मिक आयोजनों के सन्दर्भ में विद्वानों के बीच मतान्तर होना स्वाभाविक है। कदाचित् इन्हीं मतान्तरों को दूर करने के लिए निबन्धकारों ने अतीत में भी अपने निबन्ध लिखे थे।

इस मतान्तर को दूर करने के लिए दरभंगा में 1932 ई. में तत्कालीन स्थापित पण्डितों का योगदान मिथिला की धर्मशास्त्र-परम्परा में अविस्मरणीय है। उस समय के प्रख्यात ज्योतिषी पं. कुशेश्वर शर्मा, जिन्होंने 1921 ई. से 1931 ई. तक मिथिलादेशीय पंचांग का भी निर्माण किया था, पर्वों के निर्णय के लिए उस समय के विख्यात धर्मशास्त्रियों का आह्वान किया और एक एक पर्व पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर प्रमाण के साथ अपना मन्तव्य देने का अनुरोध किया। इसके अन्तर्गत कुल 83 पर्वों पर निबन्ध आये, जिनमें कुछ विषयों पर दो दो विद्वानों ने पृथक् पृथक् अपना निर्णय लिखा। इन लेखों की समीक्षा के लिए दरभंगा में ज्योतिषियों और धर्मशास्त्रियों की एक स्थायी समिति बनायी गयी, जिसके संयोजक पं. कुशेश्वर (कुमर) शर्मा थे तथा तत्कालीन अन्य 15 विद्वान् सदस्य थे–

(1) पं. श्री श्रीकान्त मिश्र, सलमपुर निवासी वयोवृद्ध पण्डित

(2) महावैयाकरण पं. दीनबन्धु झा, प्राचार्य, लक्ष्मीवती संस्कृत विद्यालय, सरिसब

(3) म. म. पं. बालकृष्ण मिश्र, प्राचार्य, प्राच्यविद्या महाविद्यालय, वाराणसी

(4) पं. मार्कण्डेय मिश्र, प्राचार्य, महाराणा संस्कृत महाविद्यालय, उदयपुर

(5) पं. श्री निरसन मिश्र, प्राचार्य, चन्द्रधारी संस्कृत महाविद्यालय, मधुबनी

(6) पं. व्रजविहारी झा, द्वारपण्डित, ड्योढ़ी, महारानी बक्ष्मीवती साहिबा, काशी

(7) पं. श्री त्रिलोकनाथ मिश्र, प्राटार्य, लोहना विद्यापीठ, (झंझारपुर) मधुबनी

(8) पं. श्री मुक्तिनाथ मिश्र, प्राचार्य, संस्कृत विद्यालय, दरभंगा

(9) पं. श्री शष्ठीनाथ मिश्र,

(10) पं. श्रीबलदेब मिश्र, राजपण्डित, दरभंगा राज्य, दरभंगा

(11) पं. श्री गेनालाल चौधरी, प्राचार्य, टीकमणि संस्कृत विद्यालय, काशी

(12) पं. श्री गङ्गाधर मिश्र, प्राचार्य, श्रीबालानन्द संस्कृत विद्यालय, देवधर

(13) पं. श्रीश्रीनन्दन मिश्र,

(14) पं. श्री हरिनन्दन मिश्र,

(15) पं. श्री दयानाथ झा, प्राचार्य, धर्मसमाज संस्कृत विद्यालय, मुजफ्फरपुर

इस पण्डित-मण्डली ने 1938 ई. में सभी निबन्धों का अवलोकन कर उसे प्रकाशित करने की अनुमति दे दी, किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ हो जाने के कारण छपाई का खर्च बढ़ने लगा अतः उसका प्रकाशन स्थगित होता गया।

अन्ततः 1985 ई. में नगेन्द्र कुमार शर्मा के सम्पादन में इस 'पर्व-निर्णय' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ, जिसमें उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती ने पुरोवाक् लिखी और नगेन्द्र कुमार शर्मा ने सभी पर्वों के विषय में अंग्रेजी में सारांश लिखा।

यह 'पर्वनिर्णय' ग्रन्थ आज उपलब्ध है और विद्वानों के बीच अतिशय आदर है। चूँकि यह एक संकलन है और अनेक विद्वानों ने विचार कर इसका अनुमोदन किया है, अतः इसे किसी भी वैयक्तिक निबन्ध से अधिक प्रामाणिक मानना चाहिए।

इस 'पर्वनिर्णय' ग्रन्थ में 79वें निबन्ध के रूप में 'कुम्भपर्वनिर्णय' है। इस निबन्ध में एक प्रश्न उठाया गया है कि क्या कलियुग के पाँच हजार वर्ष बीत जाने पर गंगा विलुप्त हो जायेगी और हरिद्वार एवं प्रयाग का कुम्भपर्व समाप्त हो जायेगा? इसी प्रश्न का उत्तर देने के क्रम में निबन्धकार ने कुम्भ पर्व का ऐतिहासिक एवं पौराणिक स्वरूप स्पष्ट किया है और विष्णुयाग आदि ग्रन्थों से कलशोत्पत्ति के मन्त्रों को उद्धृत कर कुम्भपर्व के पौराणिक स्वरूप को प्रतिपादित किया है। इसी प्रतिपादन के क्रम में आपाततः ऐसे अनेक श्लोक आ गये हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि कुम्भ पर्व का विधान केवल चार ही जगहों पर किया गया है। यद्यपि बारह राशियों में बृहस्पति के संचरण होने के कारण प्रत्येक वर्ष कुम्भ को योग होना चाहिए, किन्तु चार जगहों के अतिरिक्त शेष आठ भारत की भूमि पर न होकर दूसरे लोक में अवस्थित हैं, जहाँ केवल देवगण ही जा सकते हैं, दूसरे नहीं। अतः भारत में चार जगहों के अतिरिक्त अन्यत्र कुम्भ नाम से किसी भी पर्व का कोई शास्त्रीय आधार नहीं है।

'पर्वनिर्णय' में संकलित 'कुम्भपर्वनिर्णय' नामक निबन्ध यहाँ सुधी चिन्तकों के लिए संकलित किया जा रहा है। पर्वनिर्णय में हिन्दी अनुवाद नहीं होने के कारण पाठकों की सुविधा के लिए हिन्दी अनुवाद भी किया गया है।)

कुम्भपर्वनिर्णयः

व्यवस्थापकः- पण्डित श्री कुशेश्वर (कुमर) शर्मा

यः श्रीमांस्त्रिदशव्यथामपनयन् धन्वन्तरी रोगहा।
ह्यायुर्वेदविभासकः समजनि क्षीराब्धिमध्याद् विभुः।
कुम्भं शुद्धसुधाप्रपूरितमुखं गृह्णन् खलान् मोहयन्
मोहिन्या समपाययन्निजजनान् सोऽव्यन्मुकुन्दो हरिः॥

जो श्रीमान् मुकुन्द भगवान् देवताओं का कष्ट दूर करते हुए, रोग का नाश करनेवाले, आयुर्वेद को प्रकाशित करनेवाले धन्वन्तरि के रूप में क्षीरसागर से शुद्ध अमृत से भरे हुए कुम्भ लेकर उत्पन्न हुए तथा दुष्टों को मोहित करते हुए मोहिनी रूप धारण कर अपने लोगों को जिन्होंने अमृत पिलाया वे हमारी रक्षा करें।

यः श्रीमाणवकेऽमले मखभुवां वंशेऽवतीर्यार्द्रधी
रायाख्यस्थ उपात्तनैष्ठिकसृतिर्धर्मावनाऽऽदर्शकः।
विद्याच्छादनभोजनादिनिरतो ब्रह्मण्यतावारिधि
स्तं स्वाध्यापकमानमामि ह गुरुं हर्य्यादिनारायणम्॥

मैं अपने ऐसे दयालु अध्यापक श्री हरिनारायण को प्रणाम करता हूँ, जो श्रीमाणवक नामक निर्मल याज्ञिकों के कुल में उत्पन्न तथा राय नामक स्थान पर रहते हुए वे निष्ठा के पथ पर चलते रहे तथा धर्म की रक्षा के लिए आदर्श बने, विद्या ही इनके लिए वस्त्र और आहार के समान थी तथा वे ब्रह्मज्ञान के समुद्र थे।

अथोच्यते स्वकीयाम्बापादपद्माज्ञया मया।
कुम्भपर्वव्यवस्थेयमाप्तवाक्यैः समासतः॥

यहाँ पर मैं अपनी माता के चरण-कमल की आज्ञा से कुम्भपर्व की यह व्यवस्था संज्ञेप में आप्त वचनों की सहायता से दे रहा हूँ।

ऋष्यब्धिनवभूवर्षाद् वैक्रमादूर्ध्वमेव तु।
कुम्भपर्व हरिद्वारे न भविष्यति कर्हिचित्॥

तथैव हि प्रयागेऽपि सबाणाङ्केन्दुवत्सरात्।
इति प्रलापनाशाय प्रवृत्तिर्म्मेऽत्र बुध्यताम्॥

कुछ लोग कहते हैं कि 1947 विक्रम संवत् के बाद हरिद्वार में कुम्भ पर्व नहीं होगा। इसी प्रकार 1955 विक्रम संवत् के बाद प्रयाग में भी नहीं होगा, इन प्रलापों को मिटाने के लिए यहाँ मेरी प्रवृत्ति जानें।

तत्र तावत् कुम्भपर्व किं शास्त्रीयमस्ति, अथवा आधुनिकैः कैश्चित् केनचिद्धेतुना कल्पयित्वा प्रवर्तितमिति सन्देहविषये केचिद् विद्वासः- श्री गोविन्दद्वादशी-गजच्छाया-महोदयप्रभृतिपर्ववद् अयमपि कुम्भयोगः शास्त्रसिद्धोऽस्तीति वदन्ति।

यहाँ सबसे पहले यह विचारणीय है कि कुम्भपर्व शास्त्रीय है या कुछ आधुनिक व्यक्तियों द्वारा किसी प्रयोजन से इसकी कल्पना कर इसका आरम्भ किया गया है। इस प्रकार के सन्देह की स्थिति में कुछ विद्वानों का कथन है कि श्रीगोविन्दद्वादशी, गजच्छाया महोदय, आदि पर्व के समान यह कुम्भ योग भी शास्त्रसिद्ध है।

अपरे केचन च-

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यपूज्यपादभगवच्छ्रीशङ्करपादैः पाखण्डिकल्पितानेक-कुमार्गगतान् जनवरानालोक्य परमकारुणिकतयाऽऽर्द्रचेतसा शास्त्रीयसदाचारधर्मप्रवर्तन-पूर्वकजनतोद्धाराय दिग्विजयः कृतः तदा त्यक्तलौकिकमिथ्यापरिवारादिपरिकराः श्रीभगवत्पादशिष्याः बहवो जाताः। एवं च सति श्रीमत्परमहंसशङ्कराचार्यचरणैः सहैव परिभ्रममाणानां तेषां तच्छिष्याणां बहुतया श्रद्धालुभिरपि गृहस्थैः सत्कारकरणासामर्थ्यात् काले-काले भोजनाद्यलाभेन क्लिश्यमानानां च सतां च तेषां कल्याणाय श्रीशङ्करपादैरेव विचार्येदमुक्तम्- भवदातिथ्यविरचनविधौ नृपाणामपि संकोचो जायते किमुत अन्येषाम्; अतः पृथक्-पृथक् विचरन्तु भवन्तः पृथिव्याम्। इति प्रोक्ताश्च ते विरहकातरा ऊचुः- भो कृपालो, भवदाज्ञाकारिणामस्माकं श्रीमच्चरणकमलदर्शनाय तथा सुहृदां च समागताय कोऽपि संकेतः कल्पनीयः श्रीमद्भिः येन द्वितीये तृतीये वाऽब्दे सर्वेषां दर्शनादिकं स्यात्। इति तैः प्रार्थिताः श्रीस्वामिचरणाः परमकारुणिकतया हरिद्वार-प्रयाग-अवन्तिका-गोदावरीति चतुर्षु तीर्थेषु दशाब्दैरेव कुम्भचतुष्टयं तृतीयेऽब्दे समागमायैव कल्पयांचक्रुरिति।

अतएव

कुम्भभूमिरिति ख्यातः शाङ्कर्यसमुदायकैः।
हरिद्वारादितुर्येषु तीर्थेषु संगमः सताम्॥

इति यत्र-तत्र जनमुखाच्च श्रूयतेऽपि।

अन्य कुछ लोग कहते हैं कि

परम कारुणिक और दयालु श्रीमान् परमहंस परिव्राजाचार्य पूज्यपाद भगवान् श्री शंकराचार्य ने जब पाखण्डियों द्वारा प्रवर्तित अनेक कुमार्ग पर चलनेवाले बहुत लोगों को देखकर शास्त्रानुकूल सदाचार धर्म का प्रवर्तन करते हुए जनता के उद्धार के लिए दिग्विजय किया तब सांसारिक परिवार, परिजन आदि को मिथ्या माननेवाले अनेक लोग उनके शिष्य हो गये। ऐसा होने पर श्रीमान् परमहंस शंकराचार्यपाद के साथ ही चलनेवाले उनके शिष्यों की अधिक संख्या के कारण श्रद्धालु गृहस्थ भी उनका सत्कार करने में असमर्थ हो जाते थे। इस प्रकार समय समय पर भोजन आदि नहीं मिलने के कारण जब वे कष्ट भोगने लगे तब उनके कल्याण के लिए श्री शंकरपाद ने विचारकर ऐसा कहा- 'आप लोगों का आतिथ्य करने में तो राजाओं को भी संकोच होने लगता है तब दूसरों की क्या बात? अतः आप सब अलग अलग विचरण करें।' ऐसा कहने पर साथ छूटने के दुःख से दुःखी उनलोगों ने कहा–' हे दयालो! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है किन्तु श्रीमान् के चरण-कमल के दर्शन के लिए और सन्तों के समागम के लिए कोई संकेत आप दें, जिससे दूसरे या तीसरे

वर्ष पर सबका दर्शन हो।' शिष्यों के द्वारा ऐसी प्रार्थना करने पर परम कारुणिक श्रीस्वामिपाद ने हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन एवं गोदावरी के तट पर इन चार तीर्थों में दश वर्षों के भीतर चार कुम्भपर्व की कल्पना की जिससे तीन वर्षों पर सबका समागम हो सके।

इसीलिए

''शंकराचार्य सम्प्रदाय में हरिद्वार आदि चार तीर्थों में सन्तों का समागम हुआ और कुम्भमूमि के रूप में ये तीर्थ प्रसिद्ध हुए।''

ऐसा जहाँ तहाँ लोगों के मुख से सुना जाता है।

एवं भेदद्वये प्राप्ते अधुना भ्रमनिरसनायात्रोच्यते। श्रीशङ्करस्वामिनः शिवांशेनावतीर्णत्व-श्रवणात् स स्वामी शास्त्रव्यतिरिक्तमार्गकल्पनाय नार्हति; किन्तु शास्त्राध्ययनप्रवर्तनायैव तत्परिश्रम इत्यतः कालवशादन्तर्हितस्य कुम्भपर्वणः पुनरुद्दीपनमेव कुम्भपर्वणि शिष्याणां सर्वेषां समागमोऽस्तु किलेति तु साधुतया संकेतः संगच्छते, न तु कुम्भपर्वकल्पनं संघटते, तस्य पुराणेषु लब्ध प्रमाणत्वात्।

इस प्रकार दो भेद होनेपर अब भ्रम के निवारण के लिए यहाँ कहा जा रहा है। श्री शंकराचार्य स्वामी भगवान् शंकर के अंशावतार थे ऐसा सुना जाता है, इसलिए वे शास्त्र से अलग मार्ग की कल्पना नहीं कर सकते हैं अपितु शास्त्र के अध्ययन के लिए ही उन्होंने सारा परिश्रम किया था। इससे यह सिद्ध होता है कि समय के प्रभाव से जो कुम्भ पर्व लुप्त हो गये थे उन्हें उन्होंने फिर प्रचलन में लाया; कुम्भ पर्व के अवसर पर उनके शिष्यों का समागम हो ऐसा उन्होंने किया, न कि उन्होंने कुम्भपर्व चलाया ऐसा ऐसा निर्दुष्ट संकेत मिलता है; क्योंकि पुराणों में भी कुम्भ पर्व के प्रमाण मिलते हैं।

अथास्य पुराणसिद्धत्वमेव निश्चीयते। तथा हि मया विष्णुयागादिग्रन्थेभ्यो लब्धानि कलशोत्पत्तिप्रकाशकानि पुराणवचनानि प्रलिख्यन्ते।

अब निश्चित है कि यह पुराणसिद्ध पर्व है। इस प्रकार विष्णुयाग आदि ग्रन्थों से कलश की उत्पत्ति स्पष्ट करनेवाले उपलब्ध पुराणों के वचन यहाँ लिखे जा रहे हैं:—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कलसोत्पत्तिमुत्तमाम्।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे क्षीरोदो नाम सागरः॥
आरब्धं मथनं तस्य देवदानवपूर्वकैः।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्।
मूले कूर्मं तु संस्थाप्य विष्णोर्बाहू च मन्दरे।
एकत्र देवताः सर्वे बलिमुख्यास्तथैकतः॥

अब मैं कलश की उत्पत्ति की सुन्दर कथा कहता हूँ। उत्तर दिशा में हिमालय के पार्श्व भाग में क्षीरसागर नाम का एक समुद्र है। मन्दराचल को मथनी तथा वासुकि नाग को नेती (रस्सी) बनाकर, जड़ में कूर्म को स्थापित कर तथा विष्णु की दोनों बाहों को मन्दराचल पर टिकाकर एक ओर सभी देवता रहे और दूसरी ओर राक्षस रहे, जिनके मुखिया बलि थे। देवताओं और दानवों के द्वारा इसका मन्थन आरम्भ किया गया।

मथ्यमाने तदा तस्मिन् क्षीरोदे सागरोत्तमे।
उत्पन्नं गरलं पूर्वं शम्भुना भक्षितं च तत्॥

सागरों में उत्तम क्षीरसागर के मथे जाने पर सबसे पहले विष उत्पन्न हुआ, जिसे भगवान् शंकर ने खा लिया।

अथ स्वास्थ्यं गते लोके प्रकथ्यन्तेऽयुतानि हि।
उत्पन्नानि च रत्नानि यानि तत्र महान्ति च॥

जब लोग स्वस्थ हुए तब कहता हूँ कि दसो हजार की संख्या में जो बड़े बड़े रत्न थे वे वहाँ उत्पन्न हुए।

विमानं पुष्पकं पूर्वमुत्तमं हंसवाहनम्।
नाग ऐरावतश्चैव पादपः पारिजातकः॥
वीणावाद्यं ततश्चैव रम्भा नृत्यगुणान्विता।
मणिरत्नं कौस्तुभाख्यं बालचन्द्रस्तथैव च॥
कुण्डलानि धनुश्चैव गावः पंचशिरास्तथा।
लक्ष्मीः सुरूपा सुमनाः सुशीला सुरभिस्तथा॥
उच्चैःश्रवाः समुत्पन्नो लक्ष्मीश्च वरवर्णिनी।

इसके बाद सबसे पहले पुष्पक विमान उत्पन्न हुआ, जिसमें हंस जुते हुए थे। ऐरावत हाथी, पारिजात वृक्ष, वीणा नामक वाद्य यन्त्र, तब नाचनेवाली रम्भा, कौस्तुभ नामक मणि, बालचन्द्र, कुण्डल, धनुष, पाँच शिर वाली, सुन्दर रूप, मन, स्वभाव तथा सुगन्धिवाली कामधेनु गाय, उच्चैःश्रवा घोड़ा, तथा श्रेष्ठ लक्ष्मी ये सब उत्पन्न हुए।

तथा धन्वतरिर्देवो विश्वकर्मा कलाविदः॥
कलसश्च समुद्भूतो धन्वन्तरिकरोल्लसन्।
मुखान्तं सुधया पूर्णः सर्वेषां हि मनोहरः॥
अजितस्य पदाम्भोजकृपयैव समुद्गतम्।
क्षीराब्धिलोडनोद्भूतं कलसं सान्द्ररत्नकम्।

इसके बाद विश्वकर्मा, कला मर्मज्ञ भगवान् धन्वन्तरि उत्पन्न हुए तथा धन्वन्तरि के हाथों में स्थित कलश भी उत्पन्न हुआ। भगवान् विष्णु के चरण-कमलों की कृपा से ही क्षीरसागर के मन्थन से वह रत्न जडा हुआ कलश उत्पन्न हुआ, जो मुँह तक अमृत से भरा हुआ था और सबका मन आकृष्ट कर रहा था।

दृष्ट्वा तु तत्क्षणादेव महाबलपराक्रमः।
जयन्तोऽमृतमादाय गतो देवप्रचोदितः॥
देवकर्म समालोच्य तदा दैत्यपुरोधसा।
नागोच्छ्वासप्रव्यथिता दैत्याः शुक्रेण चोदिताः॥
जग्मुस्ते पृष्ठतो लग्ना भीतः सोऽपि पलायितः।
दिशो दश दिवारात्रं द्वादशाहं प्रपीडितः।
दैत्यैर्गृहीतस्तद्धस्तात्तेनापि पुनरेव सः॥
अहं पिबेयं पूर्वं तु न त्वं चेति विचुक्रुधुः।

महाबलशाली जयन्त ने ज्यों ही उस कलश को देखा वह देवताओं के इसारे पर देवताओं का ही कार्य समझकर अमृत लेकर भाग पड़ा। तब शुक्राचार्य के इसारे पर सर्प की साँस से जो राक्षस दुःखी थे वे भी जयन्त के पीछे-पीछे दौड़ पड़े। तब जयन्त भी डर के मारे बारह दिनों तक दसो दिशाओं में कष्ट झेलता हुआ भागता रहा। दैत्यों ने उनके हाथ से कलश छीना तो फिर उन्होंने भी छीन लिया। तब 'पहले मैं पीयूँगा, तुम नहीं' ऐसा वे विवाद करने लगे।

एवं विवदमानेषु काश्यपेषु सुधाग्रहे॥
भगवान् मोहयित्वा तान्मोहिन्या व्यभजत् सुधाम्।
विवादे काश्यपेयानां यत्र तत्रावनिस्थले।
कलसो न्यपतत्तत्र कुम्भपर्व तदोच्यते॥

इस प्रकार कश्यप के पुत्रों अर्थात् देवों और दानवों के बीच जब विवाद उत्पन्न हुआ तब भगवान् विष्णु ने मोहिनी शक्ति से उन्हें मोहित कर अमृत को बाँट दिया। कश्यप की सन्तान के इस विवाद में पृथ्वी पर जहाँ तहाँ कलश गिरे, वहाँ उस समय से कुम्भपर्व कहा जाता है।

चन्द्रः प्रस्रवणाद् रक्षां सूर्यो विस्फोटनाद् दधौ।
दैत्येभ्यश्च गुरू रक्षां शौरिर्देवेन्द्रजाद् भयात्॥
सूर्येन्दुगुरुसंयोगस्तद्राशौ यत्र वत्सरे।
सुधाकुम्भप्लवे भूमौ कुम्भो भवति नान्यथा।

चन्द्रमा ने इस कलश में से अमृत चूने से बचाया, सूर्य ने कलश को फूटने से बचाया। बृहस्पति ने दैत्यों द्वारा छिने जाने से बचाया और शनि ने देवों के राजा इन्द्र द्वारा हड़प लिए जाने के भय से रक्षा की। सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति जिस वर्ष उस राशि में होते हैं तब अमृत कुम्भ के तैरनेवाली भूमि (तीर्थ) में कुम्भ होता है, अन्यथा नहीं।

देवानां द्वादशाहोभिर्मर्त्यैर्द्वादशवत्सरैः।
जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादशसंख्यया॥
तत्राघनुत्तये नृणां तुर्यः स्युर्भुवि भारते॥
अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता देवैर्गम्या न चेतरैः।
तान्येति यः पुमान् योगे सोऽमृतत्वाय कल्पते॥
देवा नमन्ति तत्रस्थान् यथा रंका धनाधिपान्॥

देवताओं के लिए बारह दिनों पर तथा मनुष्यों के बारह वर्षों पर बीरह की संख्या में कुम्भ पर्व होते हैं। उनमें मनुष्यों के पापों को धोने के लिए चार भारत-भूमि पर हैं और आठ दूसरे लोक में हैं, जहाँ केवल देवताओं की ही पहुँच है, दूसरों की नहीं। इन स्थानों पर जो मनुष्य जाता है वह अमरत्व प्राप्त करता है और देवता भी वहाँ रहनेवालों को प्रणाम करते हैं जैसे निर्धन धन के स्वामियों को प्रणाम करते हैं।

अथ च-

पृथिव्यां कुम्भयोगस्य चतुर्धा भेद उच्यते।
चतुःस्थले निपतनात् सुधाकुम्भस्य भारते॥

गंगाद्वारे प्रयागे च धारागोदावरीतटे।
कलशाख्यो हि योगोऽयं प्रोच्यते शंकरादिभिः॥
पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशिगतो गुरुः।
गंगाद्वारे भवेद् योगः कुम्भनामा तदोत्तमः॥

और भी

भारत में चार जगहों पर अमृत कुम्भ के गिरने के कारण पृथ्वी पर कुम्भ योग के चार भेद कहे गये हैं। हरिद्वार, प्रयाग, धारा नगरी एवं गोदावरी के तट पर शंकराचार्य आदि के द्वारा कलश (कुम्भ) नामक यह योग कहा गया जाता है। सूर्य जब मेष राशि में हों और बृहस्पति कुम्भ राशि में हों तब हरिद्वार में कुम्भ नामक योग होता है जो उत्तम माना गया है।

एवं स्कान्दे हरिद्वारमाहात्म्येऽपि-

धन्यानां पुरुषाणां हि गंगाद्वारस्य दर्शनम्।
विशेषतस्तु मेषार्कसंक्रमेऽतीव पुण्यदम्॥
तत्राऽपि कुम्भराशिस्थे वाक्पतौ परवन्दिते।

इति पार्वतीं प्रति शिववाक्यम्।

इस प्रकार स्कन्दपुराण के हरिद्वार माहात्म्य में भी

''वे पुरुष धन्य हैं जो गंगा के द्वार का दर्शन करते हैं। विशेष रूप से मेष में सूर्य के संक्रमण के समय तो यह अत्यधिक पुण्यप्रद है।''

इस प्रकार पार्वती के प्रति भगवान् शिव का वचन है।

एवं पुराणान्तरेऽपि-

कुम्भराशिगते जीवे यद्दिने मेषगे रवौ।
हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्तिवर्जनम्॥
लोके कुम्भमिति ख्यातं जानीयात् सर्वतो नरैः।
गंगायां स्नानमाहात्म्यं नालंकर्तुं चतुर्मुखः॥

इसी प्रकार दूसरे पुराण में भी

''बृहस्पति कुम्भ राशि में हों और जिस दिन सूर्य मेष में जायें उस दिन हरिद्वार में किया गये स्नान से पुनर्जन्म नहीं होता है। यह लोक में कुम्भ के नाम से विख्यात है, जो लोगों के द्वारा हर प्रकार से जाना जाना है। गंगा में स्नान का माहात्म्य का वखान करने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं।"

अन्यत्रापि श्रूयते-

वसन्ते विषुवे चैव घटे देवपुरोहिते।
गंगाद्वारे च कुम्भाख्यः सुधामेति नरो यतः॥

अन्यत्र भी कहा गया है:-

वसन्त ऋतु में विषुव संक्रान्ति अर्थात् मेष राशि की संक्रान्ति होने पर तथा देवताओ के गुरु के कुम्भ राशि में रहने पर हरिद्वार में कुम्भ नामक योग बनता है, जहाँ मनुष्य अमृत हो जाता है।

अथ च प्रयागे कुम्भकाल उच्यते-

मकरे च दिवानाथे ह्यजगे च बृहस्पतौ।
कुम्भयोगो भवेत् तत्र प्रयागे ह्यतिदुर्लभः॥

अब प्रयाग में कुम्भकाल कहा जा रहा है:-

मकर राशि में सूर्य के रहने पर तथा मेष राशि में बृहस्पति के रहने पर प्रयाग में कुम्भयोग होता है, जो अत्यन्त दुर्लभ है।

तथाऽन्यत्र च-

माघे मेषगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावास्या तदा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥

साथ ही, अन्यत्र भी कहा गया है:-

''माघ मास में मेष राशि में बृहस्पति के रहने पर और मकर राशि में चन्द्रमा एवं सूर्य के होने पर अमावस्या तिथि में तीर्थराज प्रयाग में कुम्भ नामक योग होता है।''

अथावन्तिकायां कुम्भकाल उच्यते-

घटे सूरिः शशी सूर्यः कुह्यां दामोदरे यदा।
धारायां च तदा कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः॥

अब अवन्ती में कुम्भ का समय कहा जा रहा है–

''कुम्भ राशि में सूरि (बृहस्पति), चन्द्रमा एवं सूर्य के रहने पर, दामोदर (कृष्णपक्ष) की अमावस्या रहने पर धारा नगरी में मुक्ति देनेवाला कुम्भ होता है।''

अथ गोदावर्यां कुम्भकाल उच्यते-

कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्रश्चन्द्रक्षयस्तथा।
गोदावर्यां तदा कुम्भो जायतेऽवनिमण्डले॥

अब गोदावरी के तट पर कुम्भ का समय कहा जा रहा है:-

''कर्क राशि में गुरु, सूर्य तथा चन्द्रमा के रहने पर तथा अमावस्या तिथि होने पर इस पृथ्वी पर गोदावरी तट पर कुम्भ होता है।''

इत्येवं हरिद्वारादिषु चतुर्षु तीर्थेषु कुम्भचतुष्टयं शास्त्रसिद्धं प्रतिभाति। अतः श्रीहरिद्वारे प्रयागेऽत ऊर्ध्वं कुम्भपर्वाभावो भविष्यतीति प्रलापमात्रमेव; तस्य तीर्थेचतुष्टये प्रोक्तराशिषु सूर्यगुर्विन्दूनां परिवर्तनसंयोगनियमापरिहारतया तुल्यप्रमाणत्वात्।

इस प्रकार, हरिद्वार आदि चार तीर्थों में चार कुम्भ शास्त्र के द्वारा सिद्ध हैं। अतः हरिद्वार एवं प्रयाग में इसके बाद कुम्भ नहीं होगा यह केवल प्रलाप है। इन चार तीर्थों में उक्त राशियों में सूर्य, बृहस्पति एवं चन्द्रमा का परिवर्तन एवं संयोग का नियम ऐसा है, जो कभी समाप्त नहीं होगा और यही कुम्भ के लिए प्रमाण हैं।

ननु चास्तु शास्त्रसिद्धत्वम्, तथापि

कलेर्दशसहस्रान्ते विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनीम्।

तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः॥

इति सनत्कुमारसंहितास्थ-कार्तिकमाहात्म्याष्टादशाध्याये तथा ब्रह्मवैवर्तेऽपि कृष्णखण्डे नवतितमेऽध्याये नन्दं प्रति श्रीकृष्णवाक्यम्-

कलेर्दशसहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम्।
देवानां प्रतिमापूजा शास्त्राणि च पुराणकम्॥
तदर्द्धमपि तीर्थानि गंगादीनि सुनिश्चितम्।

अन्यत्र च-

बहुदोषं महादुःखं ज्ञात्वा मानुष्यमध्रुवम्।
मत्त्वा कलियुगं घोरं गंगाभक्तिस्तु गोपिता॥

वाराहोऽपि-

फलैरयुतवर्षान्तं हरिस्तिष्ठति मेदिनीम्।
तदर्द्धं जाह्नवीदेवी ग्रामदेवास्तदर्द्धकम्॥

इत्यादिवाक्यवृन्देन कलिपञ्चसहस्राब्दकाले गंगायात्राविधानात् हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गाया अभावात् कुम्भपर्वाभावोऽपि तत्र भविष्यति-

हरिद्वारे कृतं स्नानं पुनरावृत्तिवर्जनम्।

इति वाक्यात् तत्र चैवं प्रयागेऽपि गंगास्नानविधेर्नियमे सति निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याऽप्यभावादिति चेत्-

यहाँ एक सन्देह होता है कि शास्त्र का वचन है कि

''कलियुग के दश हजार वर्ष बीतने पर भगवान् विष्णु, पाँच हजार वर्ष में गंगा का जल और ढाई हजार वर्ष पर ग्रामदेवता इस धराधाम को छोड़ देंगे।''

ऐसा सनत्कुमार संहिता के अन्तर्गत कार्तिक-माहात्म्य के अठारहवें अध्याय में और ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्णखण्ड के 90वें अध्याय में नन्द के प्रति कृष्ण के वाक्य में कहा गया है–

''कलियुग के दस हजार वर्ष के अन्त तक भगवान् विष्णु पृथ्वी पर रहते हैं, इतने समय तक ही देवताओं की प्रतिमापूजा होती है, शास्त्र और पुराणों का अस्तित्व रहता है। इसके आधे समय तक गंगा आदि तीर्थ रहते हैं, ऐसा निश्चित है।''

अन्यत्र भी कहा गया है:-

''मनुष्य के जन्म को अनेक दोषों से पूर्ण, महादुःखमय और अनित्य मानते हुए तथा घोर कलियुग का काल मानकर गंगा की भक्ति तिरोहित कर दी गयी।''

वाराह पुराण में भी कहा गया है–

''दश हजार वर्ष के बीतने तक भगवान् फलों के साथ पृथ्वी पर वास करते हैं। इसके आधे समय तक देवा गंगा तथा उसके भी आधे समय तक ग्रामदेवता रहते हैं।''

इस प्रकार के अनेक वाक्यों से कलियुग के पाँच हजार वर्षों के अन्त में हरिद्वार एवं प्रयाग में कुम्भ पर्व का अभाव हो जायेगा, क्योंकि इन स्थानों पर गंगा के तट तक यात्रा करने का विधान किया गया है:-

"हरिद्वार में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता।''

इस वाक्य के अनुसार हरिद्वार में तथा प्रयाग में भी गंगा स्नान की विधि का विधान किया गया है। तब निमित्त गंगा के अभाव में नैमित्तिक कुम्भ का भी अभाव होगा। (यह पूर्वपक्ष है।)

अत्रोच्यते। 'व्रीहीनवहन्ति यजमानः' इत्यत्र सोमसवनस्य देवभागविधावुपसंहारवत् 'कलेर्दशसहस्रान्ते' इत्यादिवाक्यानां प्रलयकालीने कलौ पर्यवसानं बोध्यम्। अन्यथा चेत् उक्तवाक्येषु गंगायात्रातः पूर्वं ग्रामदेवताया यात्राकथनस्य प्रत्यक्षेणेदानीं विरोधः स्यात्, तत्पूजनविधेर्मारीशान्ति-ग्राम-निर्माणपद्धतिषु विहितत्वात् तासामद्य यथाभावं दत्तफलत्वाच्च,

यत्र यत्राधिनाथेन नियुक्ताः पालनादिषु।
आकल्पान्त प्रवर्त्तन्ते ता अधिष्ठातृदेवताः॥

इति वाक्याच्च।

यहाँ सिद्धान्त कहा जा रहा है कि 'यजमान धान कूटता है' इस नियमविधि के सन्दर्भ में सोमसवन को जिस प्रकार देवभाग की विधि के अन्त में माना जाता है, उसी प्रकार 'कलिकाल के दस हजार वर्ष के अन्त में' इस वाक्य से प्रलयकालिक कलियुग का अर्थ लेना चाहिए। नहीं तो उक्त वाक्य में गंगातट के लिए यात्रा करने के पूर्व ग्रामदेवता का दर्शन करने के लिए यात्रा का विधान तो प्रत्यक्ष रूप से अभी भी विरोधी हो जाएगा। उस ग्रामदेवता की पूजा से महामारी शान्ति होने की बात ग्रामनिर्माण पद्धतियों में कही गयी है। वे फल आज भी भाव के अनुसार मिलते हैं। कहा भी गया है-

''जहाँ जहाँ परमेश्वर ने पालन आदि के लिए अधिष्ठाता देवों को नियुक्त किया है वे देवता कल्प के अन्त तक रहते हैं।''

इस वाक्य से भी

किञ्च उक्तवाक्येषु वेदानामपि गङ्गया सहैव यात्रा-विधानमस्ति। न च तथा सम्भवति, वेदानामद्यापि विराजमानत्वात्। अतोऽत्र गंगायात्राकथनस्य दुर्वचस्त्वम्। किं च हरिवंश-बृहद्वैष्णव-कल्किपुराण-स्कन्दादिवाक्येषु पुनरपि गंगास्थितिर्दृश्यते। हरिवंशे प्रथमपर्वणि एकचत्वारिंशेऽध्याये-

कल्की विष्णुयशा नाम शम्भलग्रामको द्विजः।
सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः।
गंगायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः॥

इति कलेरन्ते भाविनि कल्क्यवतारकालेऽपि गंगास्थितिः सिद्ध्यति।

तथा उक्त पूर्वपक्ष के वाक्यों में तो गंगा के साथ वेदों के भी चले जाने का विधान किया गया है, किन्तु वेद तो आज भी विराजमान हैं। इसलिए गंगा के पृथ्वी पर से चली जाने की कथा व्यर्थ है। और भी, हरिवंश, बृहद्-वैष्णवपुराण, कल्कि-पुराण, एवं स्कन्द-पुराण आदि में इसके बाद भी गंगा की अवस्थिति दिखाई पड़ती है। हरिवंश के प्रथम पर्व में 41वें अध्याय में-

''कल्की के रूप में विष्णुयशा के नाम से गंगा और यमुना के बीच शम्भल नामक ग्राम में ब्राह्मण के रूप में सभी लोगों के हित के लिए भगवान् फिर अवतार लेंगे और अपने अनुयायियों की निष्ठा पायेंगे।''

इस प्रकार कलियुग के अन्त में होनेवाले कल्की अवतार के समय भी गंगा की अवस्थिति सिद्ध होती है।

एवं कल्किपुराणेऽपि-

उषित्वा जाह्नवीतीरे सस्मारोन्मनसात्मना।
गंगां स्नात्वा समायाता मुनयः कल्किसन्निधौ॥

इत्यादि विस्तरत उक्तम्।

इसी प्रकार कल्कि-पुराण में भी

"गंगा के तट पर वास कर मन एवं आत्मा से स्मरण करते हुए गंगा में स्नान कर मुनिगण कल्कि भगवान् के समीप पहुँचे।"

इत्यादि विस्तारपूर्वक कहा गया है।

तथा चैवं हरिवंशभविष्यपर्वणि त्रिसप्ततितमेऽध्याये कैलाशयात्रासम्बन्धे रुक्मिणीं प्रति श्रीकृष्णवाक्यम्-

प्रविश्य बदरीं पुण्यां मुनियुष्टां तपोमयीम्।
अग्निहोत्राकुलां दिव्यां गंगाम्बुप्लावितां सदा॥

इति 'सदा' शब्दः श्रीगंगास्थितिबोधकः।

और भी, हरिवंश के भविष्य पर्व में 73वें अध्याय में कैलास यात्रा के सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण रुक्मिणी से कहते हैं–

"पुण्यमय, तपोमय बदरी क्षेत्र, जहाँ अग्निहोत्र करने कारण व्याकुल मुनिगण रहा करते हैं, वह गंगाजल से सदा आप्लावित है में प्रवेश कर---।"

यहाँ 'सदा' शब्द श्रीगंगा की सदा अवस्थिति का बोध कराता है।

स्कान्दे काशीखण्डेऽपि सप्तविंशेऽध्याये-

गंगा हि सर्वभूतानामिहामुत्रफलप्रदा।
भावानुसारतो विष्णोः सदा सर्वजगद्धिता॥

इति शिववाक्यम्।

स्कन्द-पुराण के काशीखण्ड में भी 27वें अध्याय में

"भगवान् विष्णु की सत्ता के अनुसार हमेशा संसार का उपकार करनेवाली गंगा सभी प्राणियों को लौकिक एवं पारलौकिक फल देनेवाली है।"

यह भगवान् शंकर का कथन है।

तत्रैव त्रयस्त्रिंशेऽपि-

स्वर्गे प्रार्थितसंस्पर्शा सैषा स्वर्गतरङ्गिणी।
उदग्वहाभिलष्यन्ति यां देवा द्युसदः सदा॥

अद्यापि स्वर्गतरङ्गिणी गंगा स्वर्गे वर्त्तत एव तथापि काशीस्था सदा उदग्वहा सदैव उत्तरवाहिनी, अतो यां देवा इच्छन्ति इत्यर्थः। यद्वा 'सदाऽभिलष्यन्ति' इति योजनायामपि सदाऽभिलाषात् सदा स्थितिः काशीतले गंगाप्रवाहस्य सूचिता।

वहीं पर 33वें अध्याय में भी-

" स्वर्ग में जो स्वर्गंगा है, उसके जलस्पर्श के लिए देवता भी प्रार्थना करते हैं, वही गंगा काशी में उत्तरवाहिनी गंगा है, जिसे पाने की इच्छा स्वर्गलोक के देवगण भी करते हैं।"

आज भी स्वर्ग की गंगा तो स्वर्ग में है ही, फिर भी काशी की गंगा सदा उत्तरवाहिनी वह रही है, इसलिए देवगण उसे पाने की इच्छा करते हैं। अथवा यहाँ पर 'सदाभिलष्यन्ति' ऐसी पाठयोजना मानने पर 'हमेशा अभिलाषा' का भाव होने के कारण काशी में गंगाप्रवाह हमेशा रहने की बात सूचित है।

तत्रैव षण्णवतितमेऽध्यायेऽपि-

काश्यां नित्यं प्रवस्तव्यं सेव्योत्तरवहा सदा।
इत्यत्राऽपि सदासेवनोपदेशात् आकल्पं गंगास्थितिः प्रतिपाद्यते।

वहीं पर 96वें अध्याय में भी,

"काशी में नित्य वास करना चाहिए और उत्तरवाहिनी गंगा का सदा सेवन करना चाहिए।"

यहाँ भी सदा सेवन करने का उपदेश होने के कारण कल्प के अन्त तक गंगा की अवस्थिति का प्रतिपादन हुआ है।

बृहद्वैष्णवेऽपि-

पृथिवी गंगया हीना भविष्यत्यन्तिमे कलौ।
तदैव विष्णुस्त्यक्ष्यति मेदिनी नरपुङ्गवः।

बृहद्-वैष्णव-पुराण में भी-

"अन्तिम कलिकाल के अन्त में पृथ्वी पर गंगा नहीं रहेगी। उसी समय नरपुंगव भगवान् विष्णु भी पृथ्वी का त्याग कर देंगे।''

पाद्मे-

प्रणष्टद्वादशादित्ये प्रलये समुपस्थिते।
तदा वै प्रलयं यान्तु गंगाद्याश्च सरिद्वराः॥

प्रायश्चित्तप्रकरणे भगीरथं प्रति श्रीजाह्नवीवाक्यम्

यावद्धरण्यां तुलसी प्रपूज्यते गुरुर्नभस्थो दिवि कल्पपादपः।
यावत्समुद्रे बड़वानलश्च वसामि राजँस्तव चक्रखाते॥

पद्म-पुराण में भी कहा गया है-

"जब प्रलयकाल उपस्थित होगा तब बारहो आदित्य नष्ट हो जायेंगे। उस समय गंगा आदि श्रेष्ठ नदियाँ भी विलीन हो जायेंगी।"

प्रायश्चित्त प्रकरण में श्रीजाह्नवी ने भगीरथ से कहा–

"हे राजन्! जबतक पृथ्वी पर तुलसी की पूजा होगी, आकाश में बृहस्पति रहेंगे, स्वर्ग में कल्पवृक्ष होगा, जबतक समुद्र में बाडवाग्नि रहेगी तब तक में आपके रथचक्र से खोदी गयी धारा में रहूँगी।

अथात्र कौथुमीयानां श्रुतिश्च-

लोकानिमान्नयति या जननीव पुत्रान्
स्वर्गं सदा सर्वगुणोपपन्ना।
स्थानमिष्टं ब्राह्ममभीप्समानै

र्गङ्गा सदैवात्मवशैरुपास्या॥

सदोपासनाऽऽज्ञाकरणाद् वेदोऽपि गङ्गास्थितिमबाधितां बोधयति।

और भी इस विषय में कौथुमीय शाखा की श्रुति कहती है–

सभी गुणों से परिपूर्ण माता जैसे अपने पुत्रों को ले जाती है उसी तरह यह गंगा तीनों लोकों को इच्छित ब्रह्ममय स्थान स्वर्ग तक पहुँचाती है। इस स्थान की जो इच्छा रखते हैं उन्हें स्वयं को वश में रखकर गंगा की उपासना करनी चाहिए।

अत्र विशेषव्याख्याजिज्ञासा चेत् तर्हि मत्प्रणीतः श्रीगङ्गातत्त्वसन्दर्भो द्रष्टव्यः। किं बहुना, हरिद्वारे प्रयागे च कुम्भपर्व निर्बाधितमेव। अतस्तत्र तत्काले स्नानादिकं सदा कर्त्तव्यं भ्रममपहाय सुमतिभिः, सदैव तत्र गङ्गास्थितेर्निरवधित्वात् इति शिवम्।

यहाँ विशेष व्याख्या जानने की इच्छा हो तो मेरे द्वारा विरचित 'श्रीगङ्गातत्त्वसन्दर्भः' देखें। अधिक क्या कहूँ, हरिद्वार एवं प्रयाग में कुम्भ-पर्व में कोई भी बाधा नहीं है। अतः भ्रम का त्याग कर विद्वानों के द्वारा कुम्भ के काल में वहाँ स्नान आदि हमेशा करना चाहिए, क्योंकि वहाँ गंगा की अवस्थिति अनन्त काल तक बनी रहेगी। इति शिवम्।

अनेन मन्मुखोत्पन्नव्याख्यानेनेश्वरेश्वरः।
प्रीयतां बालवचनैः प्रीयन्ते पितरो यतः॥

मेरे मुख से निर्गत इस व्याख्या से परमेश्वर उसी प्रकार प्रसन्न हों, जैसे बच्चों की बोली से उनके माता-पिता प्रसन्न होते हैं।

हिन्दी अनुवादक
प. श्री भवनाथ झा
प्रकाशन पदाधिकारी
महावीर मन्दिर, पटना

❖

सिमरिया में कुम्भ/अर्द्धकुम्भ के प्रश्न पर श्री चिदात्मन् स्वामी का पक्ष

(सी. डब्ल्यू. जे. सी. नं. 15751/2011 में माननीय पटना उच्च न्यायालय द्वारा गठित समिति के समक्ष सिमरिया में कुम्भ/अर्द्धकुम्भ के प्रश्न पर श्री चिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता श्री अञ्जनी प्रसाद सिंह से साथ सम्बद्ध मुद्दों पर हुई वार्ता-विवरणी)

आज दि. 09-10-11 को 11:00 बजे दिन में हनुमानगढ़ी, अयोध्या के सभागार में माननीय पटना उच्च न्यायालय के द्वारा रिट याचिका संख्या 15751/2011 में पारित आदेश दि. 29-09 -2011 के सन्दर्भ में बैठक की गयी, जिसमें समिति के दोनों सदस्य अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के अध्यक्ष महन्त श्री ज्ञानदासजी महाराज एवं बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के अध्यक्ष श्री किशोर कुणाल उपस्थित हैं। इसमें याचिकाकर्ता श्री हरिगिरिजी महाराज, अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के महामन्त्री, कल्पवास एवं पण्डा समाज के प्रतिनिधि श्री शंकर झा, स्वामी विष्णुदेवाचार्य खखर बाबा खालसा आदि उपस्थित हैं।

श्री चिदात्मन् महाराजजी की ओर से अधिवक्ता डा. अंजनी प्रसाद सिंह एवं उनके कनीय अधिवक्ता श्री सरोज कुमार उपस्थित हैं। अधिवक्ता डा. अंजनी प्रसाद सिंह ने आने के साथ एक पत्र दि. 08-10-2011 दिया। स्वामी चिदात्मन् महाराज जी की ओर से एक विरोध पत्र प्रस्तुत किया, जिसे अभिलेख पर रखा गया है। इसमें अनेक कारणों का उल्लेख करते हुए चार सप्ताह का समय माँगा गया है। चूँकि घोषित अर्द्धकुम्भ 13-10-2011 से प्रारम्भ होनेवाला है, अतः चार सप्ताह का समय देना वाद को स्वतः निरस्त करनेवाला है। अतः इस कार्यालय के पत्रांक 66/ के. दि. 04-10-11 द्वारा जो 15 मुद्दे बनाये गये हैं, उन पर बिन्दुवार प्रश्न और उत्तर लिखे जा रहे हैं।

1. आपकी दृष्टि में कुम्भ/ अर्द्ध कुम्भ पर्व के आयोजन से जुड़े जो मुद्दे होते हैं, उनका निर्णय किस संस्था द्वारा किया जाता है?

उत्तर- अधिवक्ता अंजनी प्रसाद सिंह ने इसका उत्तर देने के लिए चार सप्ताह का समय माँगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा कि कुम्भ और अर्द्धकुम्भ भारतीय ज्योतिषियों के द्वारा गणितीय एवं ज्योतिष गणना के आधार पर किया जाता है कि किस अमुक तिथि और वार को कौन-सा पर्व और त्योहार मनाया जाना है, उसे साधु-सन्त और आम जन मानते हैं। यही परम्परा रही है।

टिप्पणी- चार सप्ताह की अवधि की माँग को अस्वीकृत किया गया; क्योंकि तब तक घोषित कुम्भ की अवधि ही समाप्त हो जायेगी।

2. सिमरिया घाट पर अर्द्धकुम्भ के आयोजन का निर्णय किस संस्था के द्वारा किया गया है?

उत्तर- हिन्दू धार्मिक ज्योतिषियों और मनीषियों द्वारा।

टिप्पणी- सच्चाई यह है कि श्री चिदात्मन्जी महाराज एवं उनकी संस्था सर्वमंगला समिति द्वारा इस कुम्भ का आयोजन किया गया है, जो उनके आमन्त्रण-पत्र से स्पष्ट है। उसमें निवेदक के रूप में श्री चिदात्मन् स्वामी के नाम का उल्लेख है।

3. क्या उसे ऐसा निर्णय करने का अधिकार है? यदि हाँ तो उसका प्रमाण प्रस्तुत किया जाये।
उत्तर- इसका उत्तर देना जरूरी नहीं है, क्योंकि यह प्रश्न प्रासंगिक नहीं है।
टिप्पणी- किसी स्थानीय संस्था या व्यक्ति को ऐसा करने का अधिकार नहीं है।

4. सिमरिया में अर्द्धकुम्भ की तैयारी कबसे चल रही है?
उत्तर– जब से नया पंचाङ्ग आया है।
टिप्पणी- यह गलत है। नया पंचाङ्ग जुलाई में आया है, किन्तु अर्द्धकुम्भ की घोषणा उनकी पत्रिका अंबर-मणि के जनवरी-फरवरी के अंक में ही हो चुका है, उसके पहले से ही यह तैयारी चल रही है।

5 सिमरिया घाट में कुम्भ/अर्द्धकुम्भ के आयोजन का विधान किसी धर्मशास्त्र में है या नहीं? यदि है तो किस ग्रन्थ में और इसके सन्दर्भ श्लोक एवं मूल-ग्रन्थ या उस अंश की सत्यापित छायाप्रति प्रस्तुत की जाये।
उत्तर- इस सन्दर्भ में कागजात समर्पित करने के लिए हमें कम से कम दो-तीन सप्ताह का समय चाहिए ताकि मैं इन प्रश्नों का समुचित उत्तर दे सकूँ।
टिप्पणी- यह प्रश्न श्री चिदात्मन्जी महाराज से प्रारम्भ से ही किया जा रहा है। दि. 11-07-11 को जब उनके दो प्रतिनिधि उनका पत्र लेकर बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के अध्यक्ष श्री किशोर कुणाल से मिले थे, तब लिखित रूप से यह प्रश्न उनसे किया गया था तथा लिखा गया था कि वे यदि एक भी प्रामाणिक श्लोक समर्थन में प्रस्तुत कर देते हैं तो वे (श्री कुणाल) कुम्भ में उनका अनुसरण करेंगे। किन्तु अभी तक उत्तर अप्राप्त है। ऐसा कोई श्लोक किसी भी धर्म-ग्रन्थ में नही है। कुम्भ के आयोजकों ने जो दो श्लोक उद्धृत किये हैं, वे फर्जी हैं। अधिवक्ता श्री सिंह को वे दोनों फर्जी श्लोक दिखला दिए गये।

6. अतीत में क्या कभी सिमरिया में कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ का आयोजन हुआ करता था? यदि हाँ, तो उस ग्रन्थ का सन्दर्भ, मूलग्रन्थ या मूल ग्रन्थ की सत्यापित प्रतिलिपि प्रस्तुत की जाये।
उत्तर- यह मेरी जानकारी में नहीं है।
टिप्पणी- किसी भी ग्रन्थ में सिमरिया में अतीत में कुम्भ होने का उल्लेख नहीं है।

7. 1938 ई. में मिथिला के मूर्द्धन्य पण्डितों की सभा में पर्वों के निर्धारण के क्रम में क्या कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के निर्द्धारण के बारे में भी निर्णय किया है? यदि हाँ तो उसका सुसंगत अंश मूल पुस्तक या सत्यापित प्रतिलिपि के साथ प्रस्तुत किया जाये।
उत्तर- इन प्रश्नों को देखने से ऐसा लगा है कि 1938 ई. में जिन पण्डितों को बुलाया गया था, उन्हें इन बातों की जानकारी नहीं रही होगी। जबकि सिमरिया घाट में समुद्र-मन्थन आदि की अवधारणा स्थापित है। और

रुद्रयामलतन्त्र में इसका वर्णन आया है, जो कि बहुत पहले का है। इन साक्ष्यों को वे न्यायालय में समर्पित करेंगे।
टिप्पणी- रुद्रयामलतन्त्र यहाँ उपलब्ध है, किन्तु उसमें कहीं भी इसका उल्लेख नहीं है। माननीय उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में दूसरा मुद्दा यही बनाया है कि इस समिति को सिमरिया में कुम्भ के बारे में शास्त्रों, ग्रन्थों में उल्लेख तथा परम्परा और रीति-रिवाज से सम्बद्ध पहलुओं पर विचार कर निर्णय लेने का अधिकार दिया है, तब इस समिति के समक्ष प्रमाण प्रस्तुत करना अनिवार्य है। ऐसा नहीं करना न्यायालय की अवमानना होगी। इस सम्बन्ध में यह माना जायेगा कि अधिवक्ता महोदय को कुछ नहीं कहना है।

8. सिमरिया घाट में आयोजित होनेवाले कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के लिए चार प्रमुख पीठों -पुरी, द्वारका, शृंगेरी, एवं बदरिकाश्रम पीठों के पूज्य शंकराचार्यों का कोई लिखित अनुमोदन मिला है? यदि हाँ तो उस पत्र की सत्यापित लिखित प्रति प्रस्तुत की जाये।
उत्तर- देश के कुछ शंकराचार्य का अनुमोदन प्राप्त है, जिसकी प्रति अगली तारीख को उपलब्ध करा दी जायेगी।
टिप्पणी- पुरी, द्वारका, एवं शृंगेरी के शंकराचार्यों ने सिमरिया के कुम्भ का लिखित विरोध किया है। द्वारका के शंकराचार्य श्री स्वरूपानन्दजी महाराज को उच्चतम न्यायालय के अन्तरिम आदेश के तहत बदरिकाश्रम का भी शंकराचार्य माना गया है। "अम्बर-मणि" पत्रिका में प्रकाशित जिन श्री स्वामी महेशाश्रमजी महाराज, आदि शंकराचार्य मठ सनातन ज्ञानपीठ, बड़शामी (कुरुक्षेत्र) की अनुमति की बात बतलायी गयी है, उनकी शंकराचार्य के रूप में मान्यता नहीं है।

9. इस प्रस्तावित कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजन के लिए अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् की लिखित सहमति प्राप्त की गयी है? यदि हाँ तो इसकी सत्यापित प्रति प्रस्तुत की जाये।
उत्तर- अगली तिथि को इसके बारे में जानकारी दी जाएगी।
टिप्पणी- अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के पास कोई आवेदन ही नहीं दिया गया है। सहमति प्राप्त नहीं की गयी है।

10. यदि किसी अन्य परम्परागत मान्य संस्था की सहमति प्राप्त हुई हो तो उसकी भी सत्यापित प्रति प्रस्तुत की जाये।
उत्तर- इसके लिए अगला समय दिया जाये।
टिप्पणी–पहले अखिल भारतीय सन्त समिति का पत्र प्राप्त था, किन्तु बाद में उन्होंने सूचित किया कि शास्त्रों के अध्ययन के बाद पाया कि कुम्भ पर्व, प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक को छोड़कर कहीं और नहीं लग सकता है।
11. इस प्रस्तावित अद्धकुम्भ में किन किन धर्माचार्यों ने उपस्थित होने की लिखित सूचना भेजी है? उनके पत्रों की सत्यापित प्रति प्रस्तुत की जाये।
उत्तर - इसकी जानकारी नहीं है। इसके लिए मुवक्किल से निर्देश लेकर अगली तिथि को बतलायी जायेगी।
टिप्पणी- देश के कुछ शंकराचार्यों - जैसे पुरी के शंकराचार्य के नाम का गलत प्रचार किया जा रहा है कि

वे उद्घाटन करने आ रहे हैं।

12. कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रकाशित तथा मिथिला के पञ्चाङ्गों में सिमरिया में कुम्भ का जो योग दिखलाया गया है, उसका क्या ज्योतिषीय आधार है? यदि कोई ज्योतिष-शास्त्रीय आधार है तो अतीत में इन पञ्चाङ्गों में ऐसा कोई योग क्यों नहीं है। और देश के अन्य पञ्चाङ्गों में इसका कोई उल्लेख क्यों नहीं है?

उत्तर- इसका उत्तर उन ज्योतिषियों से पूछा जाना चाहिए, जो पञ्चाङ्ग बनाये हैं।

टिप्पणी- संस्कृत विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति श्री उमेश शर्मा का पत्र समिति के नाम से प्राप्त है, जिसमें उन्होंने सिमरिया में कुम्भपर्व का खण्डन किया है। कुम्भ एक राष्ट्रीय पर्व है, अतः सिमरिया में कुम्भ के योग का उल्लेख देश के अन्य पञ्चाङ्गों में भी होना चाहिए। कुम्भ प्राचीन पर्व है, अतः अतीत में भी सिमरिया घाट में कुम्भ का उल्लेख होना चाहिए था।

13. सिमरिया में कार्तिक महीने में चिरकाल से कल्पवास लगता है, कुम्भ के आयोजन के बारे में उनके प्रतिनिधि संस्थाओं का क्या विचार है?

उत्तर– इस पर कल्पवासी संस्था के प्रतिनिधि प्रकाश डालेंगे।

14. इस प्रस्तावित कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजन के बारे में सिमरिया घाट पर सदियों से रहनेवाले पण्डा-समाज का क्या विचार है?

उत्तर– इस पर पण्डा-समाज के प्रतिनिधि प्रकाश डालेंगे।

15. आपकी दृष्टि में इस विवाद के सुखद समाधान का क्या उपाय है? क्या सिमरिया के कल्पवास महोत्सव को राष्ट्रीय/ अन्तरराष्ट्रीय रूप देकर सिमरिया को संसार के तीर्थ-मानचित्र पर लाया जा सकता है?

उत्तर- हमारी दृष्टि में इस विषय और विवाद का सुलभ समाधान हिन्दू धर्म के पुरोधा और शास्त्र के शीर्षस्थ विद्वान् एवं ज्योतिषियों और मनीषियों द्वारा किया जाना श्रेयस्कर होगा, जिससे सिमरिया और बिहार का नाम पर्यटन-मानचित्र पर शीर्ष स्थान पर होगा।

टिप्पणी- इस पर पृथक् रूप से प्रकाश डाला जाये।

क्या देश के शंकराचार्यों एवं प्रमुख धर्माचार्यों के बहिष्कार एवं विरोध के बावजूद धर्मशास्त्र एवं इतिहास ग्रन्थों में उल्लेख नहीं होने के बावजूद सिमरिया में कुम्भ का आयोजन कहाँ तक उचित है?

उत्तर- इसका समाधान करना आपलोगों का काम है।

कुम्भ पर्व के तीस दिन पहले सभी 13 अखाड़ों के इष्टदेवों एवं ध्वजों की प्रतिष्ठा होती है। क्या सिमरिया घाट में ऐसी विधि हो चुकी है?

उत्तर- यह विधि सम्पन्न हो चुकी है।

इसके अतिरिक्त, इस विषय पर अधिवक्ता डा. अञ्जनी प्रसाद सिंह को और कुछ नहीं कहना है।

❖

माननीय पटना उच्च न्यायालय द्वारा गठित समिति की

सिमरिया में अर्द्ध-कुम्भ विषयक संस्तुति

सी. डब्ल्यू. जे. सी. नं. 15751/2011 महन्त श्री हरि गिरि एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य के आदेश दि. 29-09-11 में उच्च न्यायालय ने कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजन के तीन पहलुओं पर गहराई से गौर करने के लिए एक समिति का गठन किया, जिसमें अखित भारतीय अखाड़ा परिषद् के अध्यक्ष, महान्त ज्ञानदास एवं बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के अध्यक्ष, श्री किशोर कुणाल को सदस्य बनाया। दि. 05-10-11 को आदेश दृष्ट होने पर यह सुनवाई दि. 08-10-11 को पटना में निर्धारित की गयी थी और इसकी सूचना श्री चिदात्मन् स्वामी को बेगूसराय के जिला पदाधिकारी के माध्यम से पत्रांक 66/ K दि. 04-10-2011 के द्वारा दी गयी। किन्तु अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के अध्यक्ष की आकस्मिक अस्वस्थता के कारण इसकी सुनवाई पटना के बदले अयोध्या में दि. 09-10-11 को 11:00 बजे निर्धारित की गयी और इसकी भी सूचना जिला पदाधिकारी, बेगूसराय के माध्यम से तत्काल पत्रांक-68/ K दि. 06-10-11 द्वारा दी गयी।दोनों पत्रों को उच्च न्यायालय के आदेश के साथ श्री चिदात्मन् स्वामी के पास तामिला के लिए भेजा गया।किन्तु श्री चिदात्मन् स्वामी ने दोनों पत्रों को लेने से इन्कार किया।अतः दोनों पत्रों को उच्च न्यायालय के आदेश के साथ उनके मन्दिर के मुख्य द्वार पर चिपका दिया गया। इसकी सूचना जिला पदाधिकारी, बेगूसराय ने अपने कार्यालय के पत्रांक 2415/गो. दि 07-10-11के द्वारा समिति को दी। तत्पश्चात् श्री चिदात्मन् स्वामी को दि- 09-10-11 के दैनिक समाचार पत्र "दैनिक जागरण" के पटना संस्करण में विज्ञप्ति के द्वारा नोटिश देकर दि. 10-10-11 को स्वयं या प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित होने का अनुरोध किया गया, किन्तु श्री चिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता डा. अज्जनी प्रसाद सिंह दि. 09-10-11 को ही 11:15 बजे हनुमानगढ़ी, अयोध्या पहुँचे। उन्होंने एक लिखित आवेदन देकर इसकी सुनवाई 4 सप्ताह के लिए स्थगित करने का अनुरोध किया, किन्तु 4 सप्ताह में प्रस्तावित अर्द्धकुम्भ की अवधि ही समाप्त हो जाती और पटना उच्च न्यायालय में दाखिल रिट याचिका बेमानी हो जाती। अतः उनसे अनुरोध किया गया कि जो इसमें मुद्दे बने हैं, उनपर बिन्दुवार अपना जो भी उत्तर देना हो, वे दें। उनके साथ जो वार्ता हुई उसको उसी समय टंकित किया गया और अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के अध्यक्ष, बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के अध्यक्ष एवं चिदात्मन् महाराज के अधिवक्ता श्री अज्जनी प्रसाद सिंह के हस्ताक्षर लिये गये और उसकी एक प्रति डा. अज्जनी प्रसाद सिंह को दे दी गयी। यह अनुलग्नक 1 के रूप में संलग्न है।

माननीय उच्च न्यायालय द्वारा गठित इस समिति को जिन तीन बिन्दुओं पर गौर करने का निर्देश किया है, वे निम्नलिखित हैं:-

(क) पहला बिन्दु यह है कि कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ मेले से जुड़े मुद्दों पर निर्णय लेने के लिए कौन सा सक्षम निकाय (संस्था) है।

इस बिन्दु पर राज्य सरकार ने विधि विभाग से परामर्श करने के बाद निम्नलिखित निर्देश पत्रांक 13473 दि.-08 सितम्बर, 2011 के द्वारा जारी किया–

"विधि विभाग से प्राप्त राय के अनुसार सिमरिया में कुम्भ या अर्द्धकुम्भ आयोजन की मान्यता देना राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र के बाहर है। ये धार्मिक मामले हैं और इन्हें धार्मिक निकायों की बुद्धिमत्ता पर छोड़ दिया जाना चाहिए।"

प्रस्तावित अर्द्धकुम्भ पर राज्य सरकार का यही नवीनतम निर्देश है।

इस निर्णय से स्पष्ट है कि विधि विभाग के निर्णय के अनुसार कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ का निर्णय करना राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र के बाहर है। सरकार के इस पत्र में धार्मिक निकायों की चर्चा की गयी और इस पत्र को अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के अध्यक्ष श्री ज्ञानदास महाराज एवं बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष को प्रेषित किया गया है, इससे यह संकेत मिलता है कि सरकार की दृष्टि में ये दो धार्मिक निकाय है, जिन्हें इसपर निर्णय करना चाहिए।

अब कुम्भ के सम्बन्ध में निर्णय लेने के बारे में क्या ये दोनों निकाय सक्षम हैं, इसपर विचार किया जा रहा है। पहले बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड के अधिकार के बारे में विचार किया जाता है। यद्यपि बिहार हिन्दू धार्मिक न्यास अधिनियम की उपविधियों में संशोधन के बाद धार्मिक न्यास पर्षद् के अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया है

उपविधि संख्या 43 - "(Ziii) to enquire into any serious case of dispute or serious allegation and take a decision after hearing the concern parties"

किन्तु कुम्भ का मामला राज्य स्तरीय न होकर पूरे देश के पैमाने पर होता है, इसलिए बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् को कुम्भ के बारे में निर्णय नहीं करना चाहिए, क्योंकि राष्ट्रीय हित का निर्धारण राज्य स्तर पर नहीं किया जा सकता है।

अब अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के अधिकार क्षेत्र के बारे में विमर्श किया जाता है:-

अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के बारे में निर्णय के लिए सर्वोच्च समिति है। ब्रिटिश काल से कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के बारे में सारा निर्णय यही संस्था करती आयी है। इस सम्बन्ध में निम्न लिखित दस्तावेज प्रासंगिक हैं:-

(i) पिछली बार कुम्भ का आयोजन 2010 में हरिद्वार में हुआ था। कुम्भ के आयोजन के पहले हरिद्वार के मेला अधिकारी द्वारा एक पत्र श्री महन्त ज्ञानदासजी महाराज, अध्यक्ष, अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद्, हनुमानगढ़ी, अयोध्या को पत्रांक अर्द्ध. शा.पत्र सं. 190/ कु.मे. अखाड़ा, दि. 2 मई, 2008 के द्वारा लिखा गया था। इस पत्र में श्री महन्त ज्ञानदासजी महाराज से निम्नलिखित शब्दों में अनुरोध किया गया था:-

"कुम्भ मेले को पूर्ण गरिमा और भव्यता के साथ सम्पन्न कराने में शासन/प्रशासन के साथ अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् का नेतृत्व व भागीदारी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। अतः उत्तराखण्ड सरकार पूर्व परम्परा का निर्वाह करते हुए वर्ष 2010 में हरिद्वार में होनेवाले कुम्भ पर्व पर सादर आमन्त्रित करती है।

(ii) कुम्भ मेला समाप्त हो जाने के बाद मेला अधिकारी ने पुनः लिखा:-

"कुम्भमेला 2010 में आपकी अगुवाई में अखाड़ों द्वारा शालीनता एवं सम्पूर्ण गरिमा के साथ सम्पन्न किया तथा समय पर मेला प्रशासन को महत्त्वपूर्ण परामर्श एवं सहयोग प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप यह मेला निर्विघ्न एवं शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुआ।"

(iii) नासिक में होनेवाले भावी कुम्भ के बारे में अभी से ही कुम्भ की तिथि स्थान एवं समय निर्धारित करने का काम अखाड़ा परिषद् ने ही किया है। इसी क्रम में आगामी कुम्भों का निर्णय बहुत पहले हो जाया करता है। 2013 की जनवरी में होनेवाला कुम्भ तो पहले से निर्धारित है ही, 2015 के जुलाई-अगस्त में जो कुम्भ होनेवाला है उसके आयोजन एवं विस्तृत कार्यक्रम की घोषणा भी अखिल भारतीय अखाड़ा पर्षद् के अध्यक्ष द्वारा की जा चुकी है, जिसकी प्रति दस्तावेज के रूप में संलग्न है। कुम्भ में उपस्थित होनेवाले सभी सम्प्रदाय अपने अखाड़ों को इस अखाड़ा परिषद् में शामिल करके एकजुटता का परिचय तो ब्रिटिश काल से ही देते रहे हैं।

(iv) सन् 1989 ई. में 30 जनवरी को विश्व हिन्दू परिषद् के अध्यक्ष श्री शिवनाथ काटजू, महामन्त्री श्री अशोक सिंहल, उपाध्यक्ष श्री श्रीशचन्द्र दीक्षित आदि ने अखाड़ा परिषद् की बैठक में लिखित रूप में यह माना कि अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् देश की एक सर्वोच्च धार्मिक संस्था है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ आयोजन एवं निर्धारण का सारा दायित्व एवं अधिकार अखिल भारतीय अखाडा परिषद् को है और यही धार्मिक निकाय है, जो सभी धर्माचार्यों की सहमति से निर्मित संस्था है और इसी के नेतृत्व में इसका आयोजन होता है। अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् की अनुमति के वगैर कहीं भी कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ का आयोजन उचित नहीं है।

(ख) माननीय उच्च न्यायालय ने जिस दूसरे मुद्दे पर समिति को गहराई से गौर करने के लिए निर्देश दिया है, वह यह है कि कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजन के बारे में इस देश में धर्मशास्त्रों/ग्रन्थों, व्यवहार एवं रीतिरिवाजों की क्या परम्परा रही है।

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित मुद्दे बनाये गये और उनके साथ उत्तर भी सम्मिलित हैं।

(i) इस सम्बम्ध में प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या सिमरिया घाट में कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजन का विधान किसी धर्मशास्त्र में है या नहीं। इस सम्बन्ध में परिस्थिति यह है कि किसी भी धर्मशास्त्र में सिमरिया में कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजन का विधान नहीं मिलता है। जब यह प्रश्न श्रीचिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता से पूछा गया तो उन्होंने इसका जबाब देने के लिए कम से कम 2-3 सप्ताह का समय माँगा, किन्तु यह प्रश्न श्री चिदात्मन् स्वामी एवं आयोजकों से महीनों से किया जा रहा है। दि. 11-07-11 को भी जब उनके दो प्रतिनिधि उनका पत्र लेकर धार्मिक न्यास पर्षद् के अध्यक्ष श्री किशोर कुणाल से मिले थे तब भी श्री चिदात्मन् स्वामी से लिखित अनुरोध किया गया था कि यदि वे एक भी प्रामाणिक श्लोक सिमरिया में कुम्भ के आयोजन के पक्ष में प्रस्तुत करते हैं तो वे (श्री कुणाल) कुम्भ के आयोजन में उनका अनुसरण करेंगे, किन्तु अभीतक उत्तर अप्राप्त है। जिन दो श्लोकों को आयोजकों ने अपनी पत्रिका "अम्बरमणि" के जनवरी-फरवरी अंक में उद्धृत किया था वे दोनों निम्नलिखित श्लोक किसी भी धार्मिक ग्रन्थ में नहीं हैं और फर्जी श्लोक बनानेवाले का संस्कृत भाषा का ज्ञान भी बहुत कमजोर है, क्योंकि इसमें अशुद्धियों की भरमार है

तुलार्के गुरू संयुक्ते सिमरियावहेति पावनः।
कुम्भयोग भवतेज प्राणिनां मुक्तिदायिनः।।
तुला राशि गते सूर्ये गुरौययोगति पावनः।
सिमरिया घट्टे कुम्भयोगो भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनः।।

अतः धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में सिमरिया घाट में कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ का विधान नहीं है। फिर भी, जन साधारण को महीनों से झूठा प्रचार कर इनके साथ कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ को आयोजकों द्वारा धोखाधड़ी की जा रही है।

(ii) इस सन्दर्भ में दूसरा पहलू यह है कि क्या इतिहास या प्रामाणिक ग्रन्थ में सिमरिया में कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजन का उल्लेख है? श्री चिदात्मन् स्वामी के प्रतिनिधि से भी सुनवाई के दौरान यह प्रश्न किया गया। उन्होंने इसका उत्तर दिया कि यह मेरी जानकारी में नहीं है। वास्तविकता यह है कि किसी भी इतिहास या प्रामाणिक ग्रन्थ में सिमरिया में कहीं भी कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ होने का उल्लेख नहीं है। अतः इस मामले में भी लोगों को गुमराह करके उन्हें कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ में शामिल होने के लिए कहा जा रहा है।

(iii) इस मुद्दे का तीसरा पहलू यह है कि कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजकों ने पहले यह प्रचारित किया था कि देश के अनेक शंकराचार्यों की सहमति इस कुम्भ के आयोजकों को प्राप्त है, किन्तु इसमें गहराई से छानबीन करने पर यह पता चला कि देश के चार पीठों- पुरी, द्वारका, बदरिकाश्रम एवं शृंगेरी के मान्य शंकराचार्यों में से किसी ने भी सिमरिया में कुम्भ के आयोजन करने का अनुमोदन नहीं किया था और "अम्बर-मणि" पत्रिका के जनवरी-फरवरी, 2011 के अंक में जिन श्री स्वामी महेशाश्रमजी महाराज, आदि शंकराचार्य मठ, सनातन ज्ञानपीठ, बड़शामी (कुरुक्षेत्र) को शंकराचार्य बतलाया गया है, उनकी मान्यता शंकराचार्य के रूप में कहीं भी नहीं है। अतः इस मुद्दे पर भी कुम्भ के आयोजकों ने लोगों को धोखे में रखकर उन्हें गुमराह करने की कोशिश की है।

(iv) इस सम्बन्ध में चौथा पहलू यह है कि अर्द्धकुम्भ के आयोजन के लिए क्या कभी अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् की अनुमति ली गयी है, अधिवक्ता श्री सिंह ने बतलाया कि अगली तिथि को इसके बारे में जानकारी दी जायेगी। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि कुम्भ के आयोजकों की ओर से अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के पास कभी इसके लिए कोई आवेदन पत्र भी प्रस्तुत नहीं किया है; अनुमति की बात तो दूर की है।

(v) जब श्री चिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता से पूछा गया कि अन्य किसी परम्परागत संस्था की सहमति प्राप्त हुई है तो उन्होंने इसके लिए अगला समय देने की माँग की। इसमें वस्तुस्थिति यह है कि पहले आयोजकों ने दिल्ली में जो सभा की थी उसमें अखिल भारतीय सन्त समिति के कुछ अधिकारी उपस्थित हुए थे, किन्तु बाद में उनके महामन्त्री, महामण्डलेश्वर स्वामी देवेन्द्रानन्द गिरिजी महाराज ने सूचित किया कि शास्त्रों के अध्ययन के बाद उन्होंने पाया कि कुम्भ पर्व केवल हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन एवं नासिक को छोड़कर कहीं और नहीं लग सकता। अतः इस कुम्भ के आयोजन में उनकी भी सहमति नहीं है।

(vi) कुम्भ के आयोजन पर जब अधिवक्ता श्री अज्जनी प्रसाद सिंह से पूछा गया कि किसी कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ में सम्मिलित होने के लिए किन किन धर्माचार्यों ने लिखित सूचना भेजी है तो इसके बारे में उन्होंने उत्तर दिया कि इसकी जानकारी नहीं है। इसमें भी वस्तुस्थिति यह है कि देश के कोई भी मान्य शंकराचार्य उपस्थित नहीं हो रहे हैं और न ही देश के कोई प्रमुख धर्माचार्य। कुछेक सामान्य एवं स्वयंभू धर्माचार्यों को छोड़कर इसमें कोई उपस्थित नहीं होने जा रहा है। अबतक की जानकारी

के अनुसार केवल श्री चक्रपाणि की उपस्थिति की सूचना है, जो साधु नहीं वल्कि गृहस्थ हैं और हिन्दू महासभा के नेता हैं। आयोजकों द्वारा यह जो प्रचारित किया जाता रहा है कि पुरी के शंकराचार्य इसका उद्घाटन करेंगे यह बिल्कुल असत्य और भ्रामक है।

(vii) 5 जून, 1938 ई० को दरभंगा में दरभंगा महाराज के तत्कालीन राज-पण्डित बलदेव मिश्र की अध्यक्षता में मिथिला के धर्मशास्त्री पण्डितों की एक सभा हुई। उसमें उन सभी धर्मशास्त्री पण्डितों को आमन्त्रित किया गया था जिन्हें एक-एक पर्व पर सभी शास्त्रीय साक्ष्यों का विवेचन कर अपना निर्णय लिखने को कहा गया था। राज पुस्तकालय, दरभंगा में हुई इस गोष्ठी में उन सभी लेखों की प्रामाणिकता की समीक्षा करने के लिए कुछ मूर्द्धन्य विद्वानों की समिति बनायी गयी। इस समिति ने 5 जून से 14 जून 1938 तक सभी प्रमाणों का विवेचन कर लेखों में संशोधन/परिष्कार करने के बाद उन लेखों की प्रामाणिकता पर मुहर लगायी। उसके बाद ''पर्व-निर्णय'' नाम से पुस्तक कुशेश्वर (ठाकुर) शर्मा के सम्पादन में तैयार की गयी। इस पुस्तक में कुल 83 पर्वों पर निर्णयात्मक लेख हैं। इस पर्व-निर्णय का 79वाँ विषय है ''कुम्भ-पर्व-निर्णय' जिसके नियामक हैं- कुशेश्वर (ठाकुर) शर्मा हैं। पं. कुशेश्वर शर्मा स्वयं ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे और उन्होंने सन् 1921 ई. से 1931 ई. तक मिथिला देशीय पञ्चाङ्ग का भी निर्माण किया था। उन्होंने भी यह निर्णय दिया था कि कुम्भ 4 ही स्थलों- हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन एवं नासिक में निर्धारित हैं। यदि आठ अन्य स्थानों का उल्लेख कहीं है, तो वे लोकान्तर में हैं, जहाँ केवल देवताओं का ही गमन सम्भव है। वे आठ कुम्भस्थल इस धराधाम पर नहीं हैं।

(viii) कुम्भ के आयोजकों ने पहले फर्जी श्लोक बनाकर और झूठ का प्रचार कर यह दावा किया कि सिमरिया में पहले कुम्भ का आयोजन होता था, जो बाद में लुप्त गयाऔर इसके समर्थन में इन्होंने फर्जी श्लोकों का निर्माण किया और जब इनके झूठ को उजागर कर दिया गया तब उन लोगों ने कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय के पञ्चाङ्ग का सहारा लेकर फिर झूठ का प्रचार प्रारम्भ किया कि वे पञ्चाङ्ग में उल्लिखित अर्द्धकुम्भ योग के अनुसार अपना सारा आयोजन कर रहे हैं। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि पञ्चाङ्ग का प्रकाशन अभी हाल में करीब दो महीना पहले हुआ है जबकि आयोजक लोग सिमरिया में अर्द्धकुम्भ का प्रचार कम से कम दस महीने से कर रहे हैं। उन्होंने एक पत्रिका अम्बरमणि का कुम्भ-विशेषांक जनवरी-फरवरी में प्रकाशित कराया, जिसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि सिमरिया में कुम्भ का योग बनता है। इसी पञ्चाङ्ग के आधार पर श्री चिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता ने भी तर्क दिया; किन्तु वे प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाये कि कुम्भ के राष्ट्रीय पर्व होने के बावजूद सिमरिया में अर्द्धकुम्भ का योग केवल संस्कृत विश्वविद्यालय के पञ्चाङ्ग में ही उल्लिखित है और देश के अन्य पञ्चाङ्गों में क्यों नहीं है।

कुम्भ कोई नया पर्व या योग नहीं है कि यह पहले पहल 2011 ई. में ही उजागर हुआ है। पहले के पञ्चाङ्गों में सिमरिया घाट में कुम्भयोग का उल्लेख क्यों नहीं हुआ था? जबकि मिथिला के पण्डितों ने 1938 ई. में इस प्रकार के योग पर गहन विवेचन किया था।संस्कृत विश्वविद्यालय के पञ्चाङ्ग में भी यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि श्री चिदात्मन् स्वामी के प्रस्ताव पर ही विश्वविद्यालय के कुछ अध्यापकों ने सिमरिया कुम्भ पर अपनी योजना बनायी। लेकिन इस निर्णय का क्या आधार है,

यह नहीं दर्शाया गया है केवल कार्तिक कृष्ण षष्ठी मंगलवार को तुला राशि की संक्रान्ति तदनुसार दि. 18 अक्टूबर के दिन पर्व निर्णय वाले स्थान में इतना लिखा गया है:-

.....मिथिलायां सिमरियाधाम्नि अद्यारभ्य मासं यावदर्द्धकुम्भयोगस्तत्र प्रतिदिनं स्नानदानादिकमनन्तफलदं तत्राप्यष्टमीचतुर्दश्यमापूर्णिमाक्षयनवमीसंक्रमणदिनानि विशेषतः पुण्यप्रदानि.....

(ix) जब इस सम्बन्ध में संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति को नोटिश देकर पूछा गया कि ऐसा कैसे हुआ तो पञ्चाङ्ग के प्रकाशन के समय में पदासीन कुलपति श्री उमेश शर्मा को इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अधिकृत किया गया। श्री उमेश शर्मा अस्वस्थता के कारण अयोध्या तो नहीं आ सके किन्तु उन्होंने अपना प्रतिवेदन भेजा जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है:-

"पञ्चाङ्ग में मुद्रित है कि अर्द्धकुम्भ का आयोजन सिमरिया में होना शास्त्रसम्मत है, मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ।शास्त्रों में कहीं भी सिमरिया में कुम्भ या अर्द्धकुम्भ के आयोजन की प्रामाणिकता नहीं देखी जाती है।पञ्चाङ्ग में छपी हुई इस बात का मैं खण्डन करता हूँ कि सिमरिया में कुम्भ या अर्द्धकुम्भ का आयोजन शास्त्रसम्मत है।"

तत्कालीन कुलपति श्री उमेश शर्मा के पत्र को अधिवक्ता श्री अज्जनी प्रसाद सिंह को भी दिखलाया गया। श्री उमेश शर्मा के पत्र को पढ़ने के बाद यह स्पष्ट है कि वहाँ संस्कृत विश्वविद्यालय ने जो पञ्चाङ्ग छापा है, उसमें इसका कोई आधार नहीं दिया है और न ही उसका समर्थन तत्कालीन कुलपति द्वारा किया गया है।

(x) सिमरिया में कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ का जो योग संस्कृत विश्वविद्यालय के पञ्चाङ्ग में दर्शाया गया है उसके बारे में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ज्योतिष विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो. श्री रामचन्द्र पाण्डेय से विमर्श किया तो उन्होंने बतलाया कि ऐसे कुम्भयोग की संभावना ज्योतिष शास्त्र में बनती ही नहीं है और फिर सिमरिया में ऐसे योग का प्रावधान कैसे आ गया? कुम्भ राष्ट्रीय पर्व है, सिमरिया में यदि ऐसा कोई योग बनता, तो देश के सभी प्रमुख पञ्चाङ्गों में आता । ऐसा कहीं कोई उल्लेख अन्य राष्ट्रीय पञ्चाङ्गों में नहीं है। अतः सिमरिया में कुम्भ का योग घोषित करना ज्योतिषशास्त्र के सिद्धान्त के विपरीत है।

(xi) वार्ता के क्रम में श्री चिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता स्वामीजी द्वारा बहु-प्रचारित तर्क प्रस्तुत किया कि जहाँ जहाँ कल्पवास होता है, वहाँ वहाँ कुम्भ होता है। किन्तु जब अखाड़ा परिषद् के अध्यक्ष ने बतलाया कि अयोध्या में कल्पवास होता है, किन्तु कुम्भ नहीं और हरिद्वार में कुम्भ लगता है, किन्तु कल्पवास नहीं होता है, तब उन्होंने यह तर्क वापस लिया और इसकी अनुमति उन्हें दी गयी।

(xii) मैथिल विद्वान् प. श्रीकृष्ण ठाकुर ने 19 वीं शती में "मिथिलातीर्थप्रकाश" नामक ग्रन्थ की रचना की जिसका प्रकाशन 1887 ई. में राज दरभंगा के प्रेस से हुआ था। इस ग्रन्थ में मिथिला के 40 तीर्थों तथा अनेक देवालयों का विवरण विभिन्न पुराणों के वचनों के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें भी सिमरिया में कुम्भ लगने की परम्परा का उल्लेख नहीं है; बल्कि सिमरिया के नाम तक की चर्चा नहीं है।

(xiii) फ्रांसिस बुकानन ने 1807-14 के बीच बंगाल के दिनाजपुर, बिहार के अधिकांश क्षेत्र एवं पूर्वी गोरखपुर और अयोध्या का सर्वेक्षण किया था, उसमें बेगूसराय के सिमरिया घाट में किसी प्रकार के कुम्भ की कोई चर्चा नहीं है।

इसी प्रकार जिला गजेटियर में भी सिमरिया में कभी भी कुम्भ के आयोजन का उल्लेख नहीं है। इसकी पुष्टि जिलाधिकारी, बेगूसराय के प्रतिवेदन से भी होती है। 1960 के गजेटियर में लिखा हुआ है :-

"Fairs and Melas:- .Some religious fairs and melas are held at Semaria Ghat on the occasion of Kartik purnimasi."

इससे भी स्पष्ट होता है कि सिमरिया में कार्तिक पूर्णिमा के ही दिन विशेष मेला वहाँ लगता था।

(xiv) इस देश में चार धाम- (पुरी, द्वारका, रामेश्वर, बदरिकाश्रम) हैं, चार शंकराचार्यपीठ (ज्योतिष्पीठ, शारदा-द्वारकापीठ, शारदा-शृंगेरीपीठ, गोवर्द्धनपीठ), सप्त पावन पुरी (अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, पुरी, द्वारावती), चार कुम्भक्षेत्र (हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, नासिक), द्वादश ज्योतिर्लिंग (सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनी में महाकाल, ओंकारेश्वर अथवा अमलेश्वर, वैद्यनाथ, डाकिनी नामक स्थान में श्री भीमशंकर, सेतुबन्ध पर रामेश्वर, दारुकवन में श्री नागेश्वर, काशी में श्रीविश्वनाथ, गौतमी तट पर त्र्यम्बकेश्वर, हिमालय पर केदारनाथ तथा शिवालय में घुश्मेश्वर) आदि निर्धारित हैं। अमरनाथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिवमन्दिर होने के बावजूद द्वादश ज्योतिर्लिंग में सम्मिलित नहीं है। इसी प्रकार अयोध्या, मथुरा, द्वारका, काशी, काञ्ची आदि अत्यन्त पावन नगरी होने पर भी यहाँ कुम्भ का आयोजन नहीं हो सकता। यदि इन तीर्थों के वासी भी कुम्भ आदि की माँग पर उतारू हो जायें तो इस देश की सांस्कृतिक परम्परा विध्वस्त हो जायेगी। सिमरिया में पावन कल्पवास-क्षेत्र होने के बावजूद कुम्भ का परम्परा कभी नहीं रही है, अतः यहाँ कुम्भ की माँग करना इस देश की सांस्कृतिक विरासत के साथ खिलवाड़ करना है।

(xv) सिमरिया में कुम्भ का प्रचार जोर-शोर से किया जा रहा है। किन्तुकुम्भ पर्व की प्रथा है कि इसे प्रारम्भ करने के एक माह पहले सभी तेरह अखाड़ों के इष्टदेवों की चरण-पादुका को उस स्थान पर प्रतिष्ठापित किये जाते हैं और अखाड़ों के ध्वज गाड़े जाते हैं। सिमरिया में अबतक ऐसा नहीं हुआ है; जबकि श्री चिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता ने गलत बतलाया कि यह सम्पन्न हो चुका है; जबकि सुनवाई में उपस्थित पण्डा समाज के तथा अन्य कल्पवास प्रतिनिधियों ने इसे एकदम असत्य बतलाया। इस प्रकार, अर्द्धकुम्भ के आयोजक सदियों से प्रचलित इस परम्परा को तोड़कर इसका उपहास कर रहे हैं और भारतीय संस्कृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं।

सिमरिया में प्रस्तावित अर्द्धकुम्भ के सभी बिन्दुओं पर श्री चिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता का उत्तर प्राप्त किया गया है और उस पर टिप्पणी भी लिखी हुई है। इस प्रश्नोत्तरी के अन्त में उन्होंने यह भी घोषणा की है कि इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ और नहीं कहना है।

फिर भी जो विरोध-पत्र दिनांक 08-10-11 सुनवाई के समय समर्पित किया है, उसमें उठाये गये प्रश्नों पर बिन्दुवार उत्तर प्रस्तुत है:-

कण्डिका 1

इसमें उन्होंने लिखा है कि रिट याचिका की कापी और माननीय उच्च न्यायालय के आदेश की छायाप्रति अप्राप्त है और कण्डिकावार उत्तर देना तत्काल सम्भव नहीं है। पटना उच्च न्यायालय के आदेश

की प्रति लेने में श्री चिदात्मन् स्वामी के इन्कार करने के बाद उनके मन्दिर के मुख्य द्वार पर दो पत्रों के साथ चिपका दिया गया और अधिवक्ता अपनी प्रस्तुति के समय इससे पूर्ण अवगत थे। जहाँ रिट यचिका की प्रति का प्रश्न है, इसमें बहुत सारे अन्य मामले हैं और उनकी सुनवाई पटना उच्च न्यायालय में दि. 17-10-11 को है। उसके पूर्व उसकी प्रति अधिवक्ता श्री सिंह को मिल जायेगी। जिन बिन्दुओं पर श्री चिदात्मन् जी का उत्तर माँगा गया है, उनमें से एक भी ऐसा नहीं है, जिसमें कानून के विशेषज्ञ के परामर्श की आवश्यकता है।

कण्डिका 2

इस कण्डिका में उठाये गये प्रश्न में उन्होंने स्वीकार किया है कि यह धार्मिक आस्था से जुड़ा हुआ प्रश्न है, जिसके कारण याचिकाकर्ताओं के अधिकारों का हनन हुआ है। फिर भी वे अपनी बात उच्च न्यायालय में बहस के दौरान रखने के लिए स्वतन्त्र हैं।

कण्डिका 3

इस कण्डिका में यह दावा किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 6 यानी श्री चिदात्मन् स्वामी कानून को माननेवाले हैं। यह सही नहीं है। श्री चिदात्मन् स्वामी ने जबरन सरकारी भूमि पर अवैध कब्जा करके करोड़ों रुपये की लागत से निर्माण-कार्य किया है। आजतक अपने आर्थिक साम्राज्य के एक पैसे का हिसाब-किताब न तो आयकर विभाग और न बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् और न जिला प्रशासन को दिया है। जब जिला पदाधिकारी बेगूसराय ने पत्र लिखकर उन्हें सूचित किया कि इस वर्ष केवल कल्पवास पर्व का आयोजन किया जायेगा, तब उन्होंने न केवल उग्र प्रदर्शन करवाया, जिसमें त्रिभुवन दास जैसे अपराधी साधुओं के साथ बैठकर अपना चित्र अखवारों में छपवाया, बल्कि उनकी माँग नहीं माँगने की स्थिति में उन्होंने जल समाधि लेने की घोषणा की । जब उन्हें परामर्श दिया गया कि यदि वे किसी सरकारी आदेश से विक्षुब्ध हैं तो उसके विरुद्ध न्यायालय में जा सकते हैं, तो इसके बदले में उन्होंने परामर्श देनेवालों के खिलाफ ही विष-वमन कराया। जब माननीय उच्च न्यायालय का आदेश उनके पास भेजा गया तो उन्होंने दोनों बार लेने से इन्कार कर दिया, जिसका उल्लेख जिलाधिकारी के प्रतिवेदन में है। यह तो लगता है कि अधिवक्ताओं की सलाह पर वे यहाँ अधिवक्ता के माध्यम से सहयोग करने के लिए नहीं; बल्ति विरोध-पत्र दर्ज कराने के लिए उपस्थित हुए हैं, अन्यथा कानून का सम्मान करना श्री चिदात्मन् स्वामी का स्वभाव नहीं है।

कण्डिका 4

संस्कृत विश्वविद्यालय के पञ्चाङ्ग में सिमरिया घाट में किस स्रोत के आधार पर यह कुम्भयोग दिखलाया गया है, इसका उल्लेख नहीं है, बल्कि उल्लेख इस बात का है कि श्री चिदात्मन् स्वामी के प्रस्ताव पर प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी। इस पञ्चाङ्ग के प्रकाशन के महीनों पहले कुम्भ की घोषणा हो चुकी थी। फिर भी यह दावा करना कि पञ्चाङ्ग के आधार पर ऐसा किया गया है, ग्राह्य नहीं है। कुम्भ पर्व कोई आधुनिक नाम नहीं है। क्या 2011 के पञ्चाङ्ग के निर्माण के समय ही संस्कृत विश्वविद्यालय के ज्योतिषियों को इसकी अनुभूति हुई? इसका पहले भी इसका उल्लेख होना चहिए था। यदि सचमुच सिमरिया में कुम्भ पर्व का योग बनता है तो देश के अन्य पञ्चाङ्गों में भी इसका उल्लेख होना चाहिए; किन्तु किसी भी राष्ट्रीय ख्याति के पञ्चाङ्ग में ऐसा उल्लेख नहीं है। श्री चिदात्मन् स्वामी जो कर रहे हैं, उससे धार्मिक अराजकता को बढ़ावा मिल रहा है जिससे राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता एवं अखण्डता को खतरा उत्पन्न हो गया है। शंकराचार्य एवं धर्माचार्यों के जो विचार हैं उनसे किसी की आस्था पर चोट नहीं पहुँचती है।

कण्डिका 5

इसमें जो बात कही गयी है, वह सही नहीं है, क्यों कि प्रशासनिक न्याय में बहुत बार ऐसा होता है कि प्रशासन का एक अंग जो पक्षकार होता है, उसी के पास निर्णय के लिए मामला इस निर्देश के साथ भेजा जाता है कि वह अपर पक्ष को सुनकर निर्णय लिया जाये। धार्मिक न्यास बोर्ड में ऐसी स्थितियाँ अक्सर आतीं हैं, जबकि धार्मिक न्यास बोर्ड स्वतः पक्षकार अदालत में रहता है। फिर भी निर्णय के लिए मामले बोर्ड के पास भेजे जाते हैं।

कण्डिका 6

इसमें भी जो बात कही गयी है, वह सही नहीं है। संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति को न केवल पटना उच्च न्यायालय में पक्षकार बनाया गया है, बल्कि उच्च न्यायालय द्वारा गठित समिति द्वारा भी उनको नोटिश जारी किया गया है। पञ्चाङ्ग निर्माण के समय श्री उमेश शर्मा कुलपति थे, जिनका नाम पञ्चाङ्ग के कवर पर संरक्षक के रूप में है। उन्होंने अपने उत्तर में यह स्पष्ट कर दिया है कि पञ्चाङ्ग में जो कुम्भयोग दर्शाया गया है, वह शास्त्र-सम्मत नहीं है और उसका खण्डन वे स्वयं करते हैं।

कण्डिका 7

ब्रिटिश काल से परम्परा रही है और पिछले हरिद्वार कुम्भ के भी दस्तावेज सम्पुष्ट करते हैं कि कुम्भ का निर्णय एवं आयोजन अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् का ही कार्य है।

कण्डिका 8

इसमें जो दावा किया गया है सिमरिया घाट ही कुम्भ की आदिस्थली रही है, उसका एक भी प्रमाण अबतक कुम्भ के आयोजकों द्वारा नहीं प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, यह कि अर्द्धकुम्भ की चर्चा हरिद्वार, प्रयाग, नासिक एवं उज्जैन में भी नहीं है, सही नहीं है। क्यों कि परम्परागत ढंग से निम्नलिखित श्लोक इसके प्रमाण माने जाते हैं:-

गंगाद्वारे प्रयागे च धारा-गोदावरी तटे।

कलशाख्यो हि योगोऽयं प्रोच्यते शंकरादिभिः।।

यानी गंगाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग, धारा (उज्जैन), गोदावरी तट (नासिक) में ही कुम्भ का योग होता है।

कुम्भ की शुरुआत या पुनरुज्जीवन 606 ई. के बाद हर्षवर्द्धन के समय ही हुआ, यह कथन भी उचित नहीं है। क्यों कि हर्षवर्द्धन प्रयाग में गंगातट पर जिस पर्व का आयोजन करते थे, वह पाँच वर्षों पर हुआ करता था, जिसमें सबसे पहले भगवान् बुद्ध की आराधना होती थी और बौद्ध भिक्षुओं को सम्मानित किया जाता था। इसके बाद ब्राह्मण धर्म से सम्बद्ध धार्मिक क्रिया-कलाप सम्पन्न होते थे। ह्वेन्त्सांग का वृत्तान्त इसका प्रमाण है। यदि उनके समय में कोई कुम्भ हुआ करता तो उनके सभा-पण्डित बाणभट्ट अवश्य उसका उल्लेख करते।

कण्डिका 9

देश के जितने भी शीर्षस्थ साधु-संन्यासी धर्माचार्य हैं, चाहे वे शंकराचार्य हैं या महामण्डलेश्वर या कोई अन्य प्रमुख धर्माचार्य हैं, सभी इसमें एकजुट हैं कि सिमरिया में कुम्भ का प्रस्ताव शास्त्र-विरुद्ध और धर्म-विरुद्ध है।

कण्डिका 10

इसमें जो लिखा गया है कि विस्तृत शोध एवं अध्ययन से 2011 में सिमरिया में गंगातट पर अर्द्धकुम्भ का योग निकला है, वह बिल्कुल गुमराह करनेवाली बात है; क्योंकि इसके समर्थन में एक भी प्रमाण नहीं है।

कण्डिका 11

इस कण्डिका में जो बतलाया गया है कि सिमरिया घाट पर कुम्भयोग का जो निर्णय लिया गया है, वह धर्माचार्यों, सन्तों एवं महापुरुषों के विचारों पर ही लिया गया है, यह भी गलत है। कुम्भ का निर्णय नेताओं, अशुचितापूर्वक उपार्जित एवं प्राप्त धन-स्वामियों एवं स्वयंभू धार्मिक नेताओं द्वारा किया गया है। धार्मिक न्यास के अध्यक्ष ने सिमरिया घाट को राष्ट्रीय स्तर के तीर्थ बनाने एवं सभी शीर्षस्थ धर्माचार्यों की उपस्थिति वहाँ सुनिश्चित कराने के लिए अथक प्रयास किया किन्तु स्वयं-भू धार्मिक और राजनीतिक नेताओं की हठधर्मिता के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो पाया।

कण्डिका 12

इस कण्डिका में यह लिखा हुआ है कि सिमरिया में कुम्भ/अर्द्धकुम्भ आस्था का विषय है और इसे प्रतिबन्धित करना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 एवं 26 का उल्लंघन है, यह भी गलत है। चूँकि माननीय उच्चतम न्यायालय ने एक केस में यह निर्णय दिया है कि जो विधान धार्मिक अनुष्ठान का अभिन्न अंग नहीं है, उनको मूर्त रूप देना मौलिक अधिकार के तहत नहीं आता है।

कण्डिका 13

इस कण्डिका में यह दावा कि सिमरिया में अर्द्धकुम्भ स्नान कोई नयी परम्परा नहीं है; बल्कि लुप्त परम्परा को पुनरुज्जीवित करना है, एक ही झूठ को बार बार दुहरानेवाली बात है। चूँकि सिमरिया में कभी कुम्भस्नान होता था। इसका एक भी प्रमाण नहीं दिया गया है।

कण्डिका 14

इस कण्डिका में जो कहा गया है कि सिमरिया के अर्द्धकुम्भ स्नान में देश के अनेक साधु-सन्तों, मान्य ज्योतिषाचार्यों एवं पञ्चाङ्गों के द्वारा वर्णित है, यह भी सत्य नहीं है। चूँकि संस्कृत विश्वविद्यालय एवं मिथिला के कुछेक पञ्चाङ्गों को छोड़कर जिनमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इन पञ्चाङ्गों का पर्व-निर्णय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित है, देश के किसी भी पञ्चाङ्ग में सिमरिया घाट पर अर्द्धकुम्भ के योग का उल्लेख नहीं है।

महन्त श्री हरिगिरि द्वारा जो याचिका दायर की गयी है, उसमें केवल श्री चिदात्मन् स्वामी को ही प्रतिवादी नहीं बनाया गया है, बल्कि सात प्रतिवादी बनाये गये हैं। पटना उच्च न्यायालय में दायर याचिका की प्रति दो-तीन दिनों के अन्दर अधिवक्ता श्री सिंह को दे दी जायेगी।

इस सम्बन्ध में पण्डा समाज के प्रतिनिधि से बात हुई और उनका बयान लिया गया। सुनवाई में

पण्डा समाज के कुल 9 सदस्य तथा सिमरिया घाट के खालसाधारियों के 1 प्रतिनिधि उपस्थित थे। इनमें से जिन चार लोगों ने अपने बयान प्रस्तुत किये वे निम्नलिखित हैं:-

(क) श्री विष्णुदेवाचार्य, अध्यक्ष, खखरबाबा खालसा, नं. 1, खालसा जन सेवा समिति, (सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट 21 के तहत पंजीकृत) सिमरियाघाट एवं तन तुलसी द्वाराचार्य, फुलहारा, थाना सिंघिया, जिला समस्तीपुर।

बयान– कुम्भ के आयोजकों ने मुझसे शास्त्र-विधि-सम्मत कोई परामर्श नहीं लिया। सिमरिया में अतीत में कभी कुम्भ की कोई चर्चा नहीं है। बिहार में अभी भी चमथा, पहलेजा, हाजीपुर, सिमरिया, मानसी(4 वर्ष पहले तक) आदि स्थानों पर कल्पवास हो रहा है। कल्पवास एवं कुम्भ के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। सिमरिया में कुम्भ आयोजित करने के लिए पर्याप्त जगह भी नहीं है। कुम्भ लगने से कल्पवास की परम्परा समाप्त हो जायेगी। कल्पवास की व्यवस्था भी मुश्किल से हो पाती है तब कुम्भ का आयोजन वहाँ कैसे हो सकेगा? इसलिए मैं सिमरिया में कुम्भ का खण्डन करता हूँ। सिमरिया में संन्यासियों एवं खालसाधारियों की परम्परा हमारी खालसा से आरम्भ हुई है।

(ख) श्री बलराम प्रसाद सिंह, सचिव, राजकीय कल्पवास मेला समिति, सिमरिया घाट, बेगूसराय

बयान– सिमरिया घाट पर 1961-62 से मैं कल्पवास समिति का सचिव हूँ। वहाँ कुम्भ के आयोजन की कोई बात अतीत में न तो देखी गयी है, न सुनी गयी है। वर्तमान घाट 1959 ई. में यातायात की सुविधा के कारण राजेन्द्रपुल के निर्माण के समय से प्रसिद्ध हुआ है। साथ ही वृन्दावन, उड़ीसा, अयोध्या, नेपाल, झारखण्ड आदि से भी सन्त कल्पवास के लिए यहाँ आते हैं। कुम्भ के आयोजकों ने कल्पवास के आयोजकों से कोई परामर्श नहीं लिया। वर्तमान में 27 महन्त सिमरिया में कल्पवास के लिए आ चुके हैं, जिन्हें सुविधा दी जा रही है। कुम्भ के लिए वहाँ जगह की भी कमी है। कुम्भ के लिए वहाँ अभीतक कोई ध्वज-स्थापना नहीं हुई है। कुम्भ के नाम पर वहाँ अफवाहें फैलायी जा रही है।

(ग) श्री रामजी झा, महामन्त्री, माँ गंगा सेवा समिति, सिमरिया घाट, बेगूसराय

बयान– सिमरिया में कुम्भ कभी नहीं लगा है। सिमरिया घाट से पहले चमथा घाट पर से ही कल्पवास की परम्परा है। 1872 ई. में रेलवे बनने से सिमरिया घाट कायम हुआ। कुम्भ लगने से कल्पवास की परम्परा समाप्त हो जायेगी। पण्डा समाज एवं दुकानदार सभी विस्थापित हो जायेंगे। श्री चिदात्मन् महाराजजी ने स्थानीय पण्डा-समाज से कोई परामर्श नहीं लिया है। श्री चिदात्मन् जी 1984 ई. में सिमरिया आये। इनका नाम उस समय श्री विश्वम्भर झा था। इनकी जन्मभूमि बछबाड़ा के रुदौली गाँव में है। इनके द्वारा रेलवे की जमीन पर स्थापित दुर्गामन्दिर में इनके सभी सगे-सम्बन्धी हैं।

(घ) श्री शंकर झा, अध्यक्ष, माँ गंगा पुरोहित विकास समिति, सिमरिया घाट, बेगूसराय

बयान– "सिमरिया में सदियों से कल्पवास मेला लगता रहा है। यहाँ कुम्भ के लिए कोई जगह नहीं है। कुम्भ का आयोजन होता है तो कल्पवास की पुरानी परम्परा समाप्त हो जाएगी। साथ ही, कुम्भ की घोषणा पूरे सिमरिया घाट को अपने कब्जे में लेने तथा तीर्थ-पुरोहितों को विस्थापित करने का षड्यन्त्र है, जिससे मिथिला क्षेत्र की प्राचीन परम्परा माप्त हो जायेगी। पूरे मिथिलाक्षेत्र से सिमरिया घाट पर अस्थि-विसर्जन, मुण्डन आदि देव एवं पितृकर्म करने के लिए लोग आते हैं, जिनकी सदियों से पूरी व्यवस्था हम तीर्थ-पुरोहित करते रहे हैं। नेपाल तथा देश विदेश से भी लोग यहाँ आते हैं। कुम्भ के नाम पर हम तीर्थ पुरोहितों

से कोई राय नहीं ली गयी है। हम इस कुम्भ का खण्डन करते हैं तथा कल्पवास को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित कर सिमरिया घाट को ख्याति दिलाने में विश्वास रखते हैं।

(3) पटना उच्च न्यायालय के आदेश का तीसरा मुद्दा यह है कि इस विवाद का सुखद समाधान कैसे निकले। इसपर श्री चिदात्मन् स्वामी के अधिवक्ता से जब पूछा गया, तो उन्होंने जबाब दिया कि " हमारी दृष्टि में इस विषय और विवाद का सुलभ समाधान हिन्दू धर्म के पुरोधा और शास्त्र के शीर्षस्थ विद्वान् एवं ज्योतिषियों और मनीषियों द्वारा किया जाना श्रेयस्कर होगा, जिससे सिमरिया और बिहार का नाम पर्यटन-मानचित्र पर शीर्ष स्थान पर होगा।"

यह सुझाव बहुत सुन्दर है। सामान्यतः शंकराचार्य हिन्दू धर्म के सर्वोच्च पुरोधा माने जाते हैं। इनकी धार्मिक सत्ता के बारे में पटना उच्च न्यायालय का निम्नलिखित निर्णय पूरे देश के धार्मिक वादों में उद्धृत किया जाता है–

The authority of Shankaracharyas has been acknowledged throughout the ages (19th Nov. 1936)

The chief Justice of Patna High Court Cortacey Terrocea in his judgement in the appeal arising out of Original Decree 3/1931 made the observation:-

"The head of each mutt in known by the title of Jagadguru Shankaracharya and his religious authority is widely, if not universally accepted."

शंकराचार्य शास्त्र के शीर्षस्थ विद्वान् होते हैं। उनके अतिरिक्त, मान्य महामण्डलेश्वर और सुधी धर्माचार्य शास्त्र के शीर्षस्थ विद्वान् होते हैं। चूँकि प्रायः इन सब ने सिमरिया कुम्भ का विरोध एवं बहिष्कार किया है, अतः सिमरिया में अर्द्धकुम्भ का कोई औचित्य नहीं है। जहाँ तक ज्योतिषियों का प्रश्न है, 1938 ई. के सभी विद्वान् , जयोतिषियों एवं पञ्चाङ्ग-निर्माण-निष्णात पण्डितों ने सभी प्रमुख पर्वों पर गवेषणापूर्ण निबन्ध लिखे और उनकी जाँच-परख के बाद ही "पर्व-निर्णयः" पुस्तक में उन्हें समाविष्ट किया गया। इस पुस्तक में 'कुम्भपर्वनिर्णयः' पर ही एक निबन्ध है, जिसमें चार ही कुम्भ- प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक का विधान है। संस्कृत विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति, जिनके संरक्षकत्व में यह पञ्चाङ्ग छपा, ऐसा ही विचार रखते हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व ज्योतिष विभागाध्यक्ष का भी मन्तव्य है कि सिमरिया में कुम्भ का आयोजन धर्मशास्त्र विरुद्ध है। अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् जो कुम्भ निर्धारण की सर्वोच्च संस्था है, ऐसा ही निर्णय कर चुकी है। तब श्री चिदात्मन् स्वामी को अपनी हठधर्मिता छोड़कर अपने, बुद्धिमान्, विद्वान् अधिवक्ता की राय मान लेनी चाहिए।

इस विवाद को सुलझाने के लिए धार्मिक न्यास बोर्ड एवं अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् की ओर से अनेक प्रयत्न किये गये

(क) सर्वप्रथम श्री चिदात्मन् स्वामी को धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष की ओर से दि. 11--7-11 को लिखकर सूचित किया गया था कि यदि श्री चिदात्मन् स्वामी या कुम्भ के आयोजक सिमरिया में कुम्भ के धर्मशास्त्रीय विधान का कोई साक्ष्य देते हैं, या अतीत में कभी भी सिमरिया में कुम्भ के होने का प्रमाण देते हैं तो सिमरिया में कुम्भ का पूर्ण समर्थन किया जायेगा, किन्तु ऐसा प्रमाण वे शुरू से लेकर सुनवाई तक नहीं दे सके हैं। प्रारम्भ में जो फर्जी श्लोकों की रचना की गयी थी, उनसे उनका झूठ पकड़ा गया और यदि अभी भी कोई प्रमाण किसी भी धर्मशास्त्रीय या इतिहास के ग्रन्थ से देते हैं तो

उस प्रमाण पर अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् द्वारा अवश्य विचार किया जायेगा और तदनुसार निर्णय लिया जायेगा। लेकिन ऐसा कोई प्रमाण है ही नहीं तो वे कहाँ से प्रस्तुत करेंगे? यदि फर्जी श्लोक रचते हैं तो वह झूठ भी पकड़ में आ जाता है; अतः वे कोई ऐसा प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके ।

(ख) सभी मान्य शंकराचार्यों सहित देश के सारे शीर्षस्थ धर्माचार्यों ने सिमरिया के कुम्भ का विरोध किया है; क्योंकि उन्हें कुम्भ अर्द्धकुम्भ या 'कुम्भ' शब्द से जुड़े किसी आयोजन पर एतराज है। इससे बचने के लिए बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड एवं अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के द्वारा अनेक उपाय सुझाये गये, किन्तु उन पर श्री चिदात्मन् स्वामी और उनके समर्थकों ने वीटो लगा दिया। उनलोगों ने प्रचारित किया कि यहाँ समुद्र-मन्थन हुआ था। इस पर बोर्ड के अध्यक्ष की ओर से सुझाव दिया गया कि "समुद्र-मन्थन-कल्पवास महोत्सव" नाम से यह घोषित किया जाये। यद्यपि भारत के किस भू-भाग में समुद्र-मन्थन हुआ था, इसका कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, किन्तु देश में समुद्र-मन्थन के नाम से किसी महोत्सव का आयोजन नहीं हो रहा है, इसलिए इस नाम पर धर्माचार्यों को कोई आपत्ति नहीं थी।

(ग) इसके अतिरिक्त कुम्भ का पर्यायवाची कलश और उसमें अमृत डालकर इसे "अमृत-कलश-महोत्सव" या 'कल्पवास-अमृत-कलश' नाम भी सुझाया गया। 'कुम्भ' का पर्याय 'कलश' होता है और उसमें अमृत भी भरकर उन्हें दिया गया, फिर भी इसे वे मानने के लिए तैयार नहीं हुए। चूँकि 'कुम्भ' शब्द ऐसे पर्व के लिए रूढ हो चुका है जो इस देश में कुछ वर्षों के अन्तराल पर प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक में ही आयोजित होता हैं। आयोजकों ने यह प्रचारित किया कि प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिक के अलावे कुम्भकोणम् में भी हर बारह साल पर कुम्भ लगता है। जब इसके बारे में विवेचना की गयी तो ज्ञात हुआ कि वहाँ बारह वर्ष पर पर्व तो होता है पर उसका नाम 'महामहम्' (संस्कृत- महामखम्) है, जिसका अर्थ 'महायज्ञ' होता है। वे कुम्भ शब्द को छोड़कर कोई भी अन्य शब्द से आयोजन करते, तो किसी को कोई आपत्ति नहीं होती।

अब प्रश्न उठता है कि बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् एवं अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् द्वारा अनेक विकल्प सुझाये जाने पर भी श्री चिदात्मन् स्वामी एवं उनके समर्थक क्यों अपनी बात पर आमादा रहे। इसका मुख्य कारण है कि शुरू से ही श्री चिदात्मन् स्वामी कानून की धज्जियाँ उड़ाकर इस स्थिति पर पहुँचे हैं। सिमरिया घाट में भारतीय रेलवे की जमीन पर अपने विशाल आश्रम बनवाकर भी वर्षों से वे कानून के सिकंजे से बाहर रहे हैं और इतना ही नहीं, इस अवैध निर्माण में सहयोग देनेवाले बहुत से अधिकारी और नेता शामिल हैं, जिनके बल पर वे देश के सारे धर्माचार्यों एवं स्थापित परम्पराओं को तोड़ रहे हैं। इनके पीछे नेताओं का ऐसा समर्थन है कि वे अपने को किसी भी कानून से ऊपर समझते रहे हैं। वहाँ के एक सांसद जो अभी बेगूसराय से विस्थापित होकर अन्यत्र चले गये हैं, वे इस पूरे प्रकरण की आग में घी डालने का काम कर रहे हैं। किसी भी सम्भाव्य समाधान को तोड़ने में इनकी प्रमुख भूमिका रही है- जला करे साकेत, दशानन की लंका आबाद रहे। इनकी अदूरदर्शिता एवं हठधर्मिता के चलते सिमरिया घाट में देश के जो प्रमुख धर्माचार्य कल्पवास के नाम पर आने के लिए प्रस्तुत थे, वे नहीं आयेंगे और इससे सिमरिया एवं बेगूसराय के विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया गया है। इसके चलते कल्पवासी एवं पण्डा-समाज की परेशानियाँ बढ़नेवाली है।

एक दूसरे नेता, जो अभी मन्त्री हैं, जिन्होंने अपने विधान पार्षद कोष से एक हॉल बनवाकर श्री चिदात्मन् स्वामी को समर्पित कर दिया है और उसी सभागार में श्री चिदात्मन् स्वामी अनशन पर बैठे हुए थे और जल-समाधि लेने की धमकी दे रहे थे। यह भी आश्चर्य का विषय है कि भारतीय रेलवे की जमीन पर उसकी सहमति के वगैर वर्तमान मन्त्री के कोष से वहाँ निर्माण कैसे हो गया, यह जाँच का विषय होना चाहिए। जब श्री चिदात्मन् स्वामी ने अपनी माँग नहीं माने जाने पर जल समाधि की घोषणा की थी तब बिहार सरकार ने अपना निर्णय गृह विभाग के पत्र द्वारा जिलाधिकारी, बेगूसराय को सूचित किया गया था। इसके बाद जिलाधिकारी ने जो पत्र श्री चिदात्मन् स्वामी को लिखा उस पत्र को सुपुर्द करने के लिए बिहार सरकार के एक वरिष्ठ मन्त्री पटना से चलकर सिमरिया गये और जिलाधिकारी का पत्र अपने हाथ में लेकर श्री चिदात्मन् स्वामी को गर्व के साथ सौंपा। ऐसी स्थिति में किसी का स्वयं को सरकार से ऊपर समझना स्वाभाविक है। उनको इन नेताओं ने यह समझा दिया है कि आप कानून और देश की परम्परा आदि सबको तोड़ते चलिए, हमलोग आपके पीछे हैं और आपका बाल बाँका नहीं होगा।

पूरे बिहार में कानून का शासन है, किन्तु सिमरिया घाट पर श्री चिदात्मन् स्वामी का साम्राज्य चलता है। आजतक उनको अवैध भूमि के अतिक्रमण के लिए सुप्रीम कोर्ट के पिछले दो वर्षों में तीन बार आदेश पारित करने तथा उन आदेशों की प्रति जिला पदाधिकारी से लेकर मुख्य सचिव तक अनेक बार धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा भेजने के बावजूद एक नोटिश देने की हिम्मत किसी अधिकारी की नहीं हुई। उल्टे, मन्त्री लोग उनके चरण-स्पर्श कर आशीर्वाद पाकर अपने को धन्य समझते रहे हैं। सिमरिया में राज्य सरकार का ही नहीं बल्कि भारत सरकार और माननीय उच्चतम न्यायालय का भी शासन नहीं चलता है।

कुम्भ के आयोजन में करोड़ों का खर्च होता है। धार्मिक न्यास बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा आयकर विभाग के मुख्य आयुक्त को महीनों पहले लिखने के बावजूद धड़ल्ले से स्वेच्छा एवं जबरन चन्दा वसूली का काम चलता जा रहा है, जिसका न कोई हिसाब-किताब किसी अधिकारी के पास समर्पित किया गया है। हमारी जानकारी में अबतक कुम्भ आयोजन के आय-व्यय पर आयकर विभाग द्वारा कोई भी कारगर सर्वे नहीं किया गया है। इस प्रकार, काले धन का कोई हिसाब-किताब रखनेवाला नहीं है।

श्री चिदात्मन् स्वामी को यह समझा दिया गया है कि सुप्रीम कोर्ट के आदेश अपनी जगह पर है और धर्म की आड़ में आपने जो कुछ अवैध ढंग से अतिक्रमण किया है, उसकी ओर निगाह डालने की हिम्मत किसी को नहीं है। जो कुछ अवैध कार्य उनके द्वारा हुआ है, सबको ठीक-ठाक कर दिया जायेगा।

जब सरकारी अधिकारियों को ही हिम्मत नहीं होती है कि श्री चिदात्मन् स्वामी को नोटिश तक दें, तो वे किसी धर्माचार्यों की बात कहाँ सुनेंगे। एक ओर देश के सारे शंकराचार्य और धर्माचार्य हैं, जो एक स्वर में कह रहे हैं कि सिमरिया में कुम्भ का आयोजन शास्त्र एवं धर्म के विरुद्ध है, दूसरी ओर सिमरिया घाट पर बैठा हुआ एक स्वयंभू धर्मात्मा महीनों से धर्म के नाम पर झूठ का पुलिंदा बाँट रहा है और उन्हें रोकनेवाला कोई नहीं है। लगातार झूठे प्रचार के आधार पर लोगों को गुमराह किया जा रहा है कि कभी सिमरिया में कुम्भ होता था और उस झूठ को उजागर करनेवालों के खिलाफ नेताओं के बल पर अप-प्रचार तथा चरित्र-हनन का प्रयास किया जा रहा है। ऐसे तत्वों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है। विधि विभाग से परामर्श के बाद सरकारी निर्देश के बावजूद कि कुम्भ की मान्यता देना या न देना सरकार के अधिकार-क्षेत्र के बाहर है, नेतालोग कुम्भ की दुहाई दे रहे हैं। सरकारी निर्णय के अनुसार कुम्भ का निर्णय धार्मिक निकायों की बुद्धिमत्ता पर छोड़ देना चाहिए और देश का हर धार्मिक निकाय यह घोषित कर रहा है कि सिमरिया का कुम्भ शास्त्र एवं धर्म विरुद्ध है, किन्तु सिमरिया में नेता लोगों ने इस कुम्भ का अपहरण

(हाइजैक) कर लिया है, ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि क्या सिमरिया या बिहार की धार्मिक परम्पराएँ नेताओं के हमले से अक्षुण्ण रह पायेगी?

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हैं-

1. सिमरिया में कुम्भ या अर्द्धकुम्भ का विधान किसी धर्मशात्र में नहीं है।
2. सिमरिया में अतीत में कुम्भ या अर्द्धकुम्भ कभी नहीं हुआ था।
3. सिमरिया में कुम्भ/अर्द्धकुम्भ के पूर्व न तो अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् की अनुमति ली गयी है न ही किसी भी शंकराचार्य का अनुमोदन प्राप्त किया गया है।
4. इस अर्द्धकुम्भ में कोई भी मान्य शंकराचार्य या प्रमुख धर्माचार्य ने अपने आगमन की लिखित सूचना नहीं दी है। इन सबके विरोध एवं बहिष्कार के बावजूद इनके नामों की घोषणा आयोजकों के द्वारा की जा रही है, जो जनता के साथ धोखाधड़ी है।
5. प्रशासन से जुड़े व्यक्तियों को यह छानबीन करनी चाहिए कि राज्य के बहुत सारे नागरिकों को झूठ के आधार पर गुमराह करने की जो धोखधड़ी चल रही है, वह क्या अपराध की परिभाषा में आता है या नहीं? इस कुम्भ पर्व को स्थानीय नेताओं ने हाइजैक कर लिया है और वे किसी भी समाधान का विरोध कर रहे हैं। चूँकि उन्हें अपनी राजनीतिक स्वार्थ की रोटी सेंकनी है।

अन्त में समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि अर्द्धकुम्भ आयोजित करने का अधिकार अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् को है तथा सिमरिया घाट में कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ के आयोजन का कोई औचित्य नहीं है, बल्कि यह शास्त्र-विरुद्ध एवं धर्म-विरुद्ध है। देश के सारे प्रमुख धर्माचार्य इसके विरुद्ध हैं अतः यह समिति अनुशंसा करती है कि सिमरिया में अर्द्धकुम्भ के नाम पर जो आयोजन होनेवाला है, उसे कुम्भ/ अर्द्धकुम्भ का निर्णय करनेवाली सर्वोच्च धार्मिक निकाय अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् एव चारों पीठों के मान्य जगद्गुरु शंकराचार्य शास्त्र-विरोधी एवं परम्परा-विरोधी मानते हैं। यह देश की सांस्कृतिक एकता और अखण्डता की विरासत को विध्वंस करनेवाली कार्रवाई है, अतः इसे अविलम्ब रोका जाना चाहिए; नहीं तो कोई भी स्वयंभू धार्मिक नेता देश की सांस्कृतिक विरासत पर स्वार्थवश आघात करने के लिए प्रस्तुत होगा। जिस देश का आदर्श वाक्य "सत्यमेव जयते" हो, उस देश में झूठ की बुनियाद पर अनधिकृत व्यक्तियों द्वारा चलाये गये आन्दोलन की अनदेखी करना देश के संविधान की भावना पर ठेस पहुँचानेवाला होगा। समिति यह भी महसूस करती है कि राज्य सरकार के विधि-विभाग के परामर्श के बाद जारी सरकारी पत्र 13473 दि.-08 सितम्बर, 2011 के आलोक में धार्मिक निकायों के निर्णय को मूर्त रूप देना आवश्यक है तथा उच्च न्यायालय द्वारा गठित समिति की अनुशंसा के आलोक में इसका अनुपालन किया जाना चाहिए। अन्यथा अपने कैरियर के प्रारम्भ से ही अवैध कार्य करनेवालों को कानून से खिलवाड़ करते रहने का प्रश्रय मिलेगा और वे अपने आप को कानून, शासन और उच्चतम न्यायालय से भी ऊपर समझने लगेंगे। हाँ, यदि अर्द्धकुम्भ के आयोजक यह घोषणा करते हैं कि अतीत में सिमरिया में कुम्भ और अर्द्धकुम्भ की कोई परम्परा नहीं थी और इस आयोजन को इन शब्दों से वियुक्त कोई अन्य नाम देते हैं, तो किसी धार्मिक निकाय को कोई आपत्ति नहीं होगी।

❖

पर्व-निर्णय ग्रन्थ के भूमिका लेखक श्री नगेन्द्र कुमार शर्मा के द्वारा भूमिका में कुम्भपर्वनिर्णय निबन्ध का अंग्रेजी में प्रस्तुत संक्षिप्त विवेचन

Kumbhaparvanirnayah

by Nagendra Kumar Sharma
Dharmasastracarya, Sahityacarya , Varanasi
B.A. (Hons), Patna; B.Sc.(Econ) London;
L.L.B. London Certificate in International Law, London
of Lincoln's Inn, Barrister;
Advocate, Supreme Court of India.

(कुम्भपर्वनिर्णयः)

According to mythology a Kumbha or Kalasa (pitcher) containing nectar is said to have been churned out together with other items from the Ksiroda sea extending along the Himalayas by a joint venture of the Devas and the Dãnvas.[4]

Footnote 4. (An analogy can be found in the contemporary proposal in the Law of Sea Treaty [1982] to extract minerals, oil and natural gas from the bed of the open seas under the supervision and control of the International Sea-Bed Authority, which has been ratified by all the members of the United Nations Organisation except the members of the United Nations Organisation except the USA, Venezuela, Israel and Turkey and distribute the same to all nations equitably irrespective of fact whether they are littoral States or not as these resources are to be deemed as the common heritage of mankind.)

Both sides wanted to have exclusive possession over the pitcher to achieve immortality by consuming the nectar contained in it and deny it to the other side altogether. A dispute arose between them, in course of which at the hint of the Devas one Jayant fled away with the pitcher on their behalf. The Dãnvas chased him in hot pursuit day and night for 12 days in all ten directions. In course of this chase, the pitcher changed hands several times and fell on certain spots on the earth.

Now both sides claimed priority in respect of drinking the nectar. While this altercation was in progress, Lord Visnu appeared on the scene in the shape of Mohini. The Dãnvas got hypnotised at the sight of this figure and became inactive and ceased quarrelling.[1]

Footnote1.(Another analogy : Nerve gases in biological warfare to render enemy forces incapable of action.)

In the meantime Lord Visnu distributed all the nectar among the Devas and thus he bestowed immortality on them. The Dãnvas, of couse, were denied this privilege. The origin of this Parva is to be traced to this event and as the Kumbha (Pitcher) is the most dominating object in this story it is called Kumbha Parva.[2]

2. ('अथातः सम्प्रवक्ष्यामि... ... ... कुम्भपर्व तदोच्यते।' See this digest PP 181-82)

The antiquity of the Kumbha parva may be referred to periods prior to the Purãnas inasmuch as after having been in vogue for a sufficiently long time, it would have merited a mention in them.[3]

3. ('अथातः पुराणसिद्धत्वमेव निश्चयते।' See this digest, PP 481)

However, some people attribute its creation to Adi Sankarãcãrya (Early 9th century). The nibandhakãra has refuted this view, saying that Sankarãcãrya only rejuvinated it with a view to hold periodic assembly of all his disciples in different sacred places connected with this parva when it was falling into decay.[4]

4. ('कालवशादन्तर्हितस्य कुम्भपर्वणः पुनरुद्दीपनमेव कुम्भपर्वणि शिष्याणां सर्वेषां समागमोऽस्तु किलेति तु साधुतया संकेतः संगच्छते, न तु कुम्भपर्वकल्पनं संघटते।' I bid 481)

Sankara propagated for religious and cultural integration of India and mutual assimilation of culture of Aryãvarta and Dãksinã and therefore, it is probable that the would prescribe meetings for his following and disciples in rotation through Haridwãr, Prayãga, Avantikã (Ujjain) and Godãvari (Nãsik) every ten years to take stock of the achievement of his movement.[1]

1. ('हरिद्वार–प्रयाग–अवन्तिका–गोदावरीति चतुषुं तीर्थेषु दशाब्दैरेव कुम्भचतुष्टय तृतीयेऽब्दे तेषां समागमाथैव कल्पयांचक्रुरिति।' See this digest P. 481)

This parva occurs once in twelve years and is held only in four places, namely, Haridwãr, Prayãga, Dhãrã Avantikã, (Ujjain) and the banks of the river Godãvarí where the pitcher containing nectar touched the land.[2]

2. ('पृथिव्यां कुम्भयोगस्य..... शंकरादिभि;।' Ibid P. 481.)

Any one visiting these places and bathing on the occasion of this parva may attain immortality[3]

3. ('तान्येति यः पुमान् योगे सोऽमृतत्वाय कल्पते।' Ibid P. 482.)

The nibandhakãra has elaborately described the time and planetary conjunctions for this parva at the above four places.[4]

4. (Ibid P. 483.)

The conjunction on amãvãsyã tithi is the most important and is called Purna-Kumbha. A bath in the river Gangã, particularly at the confluence of the Gangã and tye Yamunã at Prayãga on this occasion is hignly commended.It is said to be more conducive to merit than a thousand Asvamedha Yajnas.

❖

सिमरिया में कार्तिक कल्पवास की मोक्षदायिनी परम्परा को बाधित न करें

बेगूसराय जिलान्तर्गत सिमरिया मिथिला क्षेत्र का पावन गंगातीर्थ है। परम्परानुसार यहाँ की गंगा उत्तरवाहिनी मानी जाती है, जहाँ दूर दूर से लोग प्रतिदिन स्नान, अस्थि-विसर्जन आदि करने के लिए आते हैं। मिथिला क्षेत्र में अति निर्धन एवं अकालमृत्यु-प्राप्त लोगों का श्राद्ध भी अक्सर यहाँ पर होता है। साथ ही, मिथिला में श्राद्ध कहीं भी हो, तो गंगाजल, मिट्टी एवं बालू यहाँ से ले जाने की पुष्ट परंपरा रही है। कार्तिक में यहाँ लोग कुटी बनाकर मास भर कल्पवास करते हैं और प्रतिदिन गंगास्नान का पुण्य अर्जित करते हैं। फलतः सम्पूर्ण मिथिला क्षेत्र के लिए यह घाट आस्था का केन्द्र है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि पहले सिमरिया घाट इस स्थान से पश्चिम रूपनगर टोला के समीप था। राजेन्द्र पुल के निर्माण के बाद से वर्तमान घाट स्थापित हुआ।

सिमरिया में कुम्भ के आयोजन का प्रचार असत्य के आधार पर किया गया। विगत कुछ वर्षों में पुल के पश्चिम में मन्दिर तथा पक्का आवासीय परिसर का निर्माण कर सिद्धाश्रम, कालीपीठ, सिमरिया घाट की स्थापना की गयी और अखिल भारतीय सर्वमंगला अध्यात्मयोग विद्यापीठ स्थापित हुआ। इस समिति की ओर से यह प्रचारित किया गया कि सिमरिया आदिकुम्भ का तीर्थ है और अतीत में यहाँ कुम्भपर्व मनाया जाता था; किन्तु कालान्तर में यह परम्परा लुप्त हो गयी और उसे पुनः जीवित किया जा रहा है। कुम्भ के आयोजकों ने यह लिखित व्याख्या की कि सिमरिया शब्द 'सामृता' से निकला- 'जहाँ अमृत बाँटा गया और बाँटने के क्रम में गिरा- सामृता।' भाषाविज्ञान का कोई भी जानकार ऐसी व्युत्पत्ति को मान्यता नहीं दे सकता। सिमरिया में कुम्भ के आयोजकों ने निम्नलिखित दो श्लोक गढ़े भी-

तलार्के गुरू संयुक्ते सिमरियाधट्टति पावनः।
कुम्भयोग भवेतत्र प्राणिनां मुक्ति दायिनः॥
तुलाराशि गते सूर्ये गुरौयोगति पावनः।
सिमरियाघाट्ट कुम्भयोगो भुक्तिः मुक्तिः॥

(अंबरमणि पत्रिका, अंक-11 जनवरी-फरवरी 2011, पृष्ठ संख्या 38)

इस श्लोक के कई पाठान्तर इनकी पत्रिका के विभिन्न पृष्ठों एवं कुम्भ-आमन्त्रण-पत्र में उपलब्ध हैं, कहीं पर 'सिमरियाधट्टति' के बदले 'सिमरिया बहेति' है। श्लोक के अन्त में 'भुक्तिः -मुक्ति प्रदायिनः' भी छापा गया है मुद्रण की त्रुटि की भरमार है उसे हम अपने विवेक से सुधार भी लेते हैं, फिर भी भाषा एवं छन्द से सम्बन्धित अशुद्धियों की भरमार है। ये दोनों श्लोक मनगढ़न्त हैं; ये किसी भी शास्त्रीय पुस्तक में उपलब्ध नहीं हैं। इतना ही नहीं, इन फर्जी श्लोकों के रचनाकारों को संस्कृत व्याकरण और छन्दःशास्त्र का भी ज्ञान नहीं है; अन्यथा ये निम्नलिखित अशुद्धियाँ नहीं लिखते। यहाँ हम मान लेते हैं कि मुद्रण में यदि सावधानी बरती जाती तो इस श्लोक का स्वरूप कुछ ऐसा होताः

तुलार्के गुरुसंयुक्ते सिमरियाघट्टेतिपावनः।
कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्राणिनां मुक्तिदायिनः।।
तुलाराशिगते सूर्ये गुरौ योगेऽतिपावनः।
सिमरियाघट्टे कुम्भयोगो भुक्तिमुक्तिप्रदायिनः।।

तब भी कोई बतलाएँ कि पुल्लिंग एकवचन अतिपावनः का अन्वय तो कुम्भयोगः के साथ हो जाएगा, लेकिन बहुवचन 'मुक्तिदायिनः' के साथ कैसे करेंगे? दूसरे श्लोक में भी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनः बहुबचन का अन्वय हम किसके साथ करेंगे? दरअसल यहाँ किसी ने 'पावनः' के साथ तुकबंदी मिलाने के लिए 'मुक्तिदायिनः' का प्रयोग किया है।

यहाँ अनुष्टुप् छन्द है, जिसके सभी चरणों में 8 अक्षर होते हैं, यानी यहाँ एक पंक्ति में 16 अक्षर होंगे, जबकि पहली पंक्ति में 18, दूसरी में 16, तीसरी में 16, तथा चौथी पंक्ति में 18 अक्षर हैं। जब अनुष्टुप् छन्द की स्थूल गणना में यह दुःस्थिति है, तो सूक्ष्म विचार करने से क्या फायदा! वे कहते हैं कि श्लोक पुराना है, इसलिए अशुद्धियाँ आ गयी हैं।ऐसा है तो उसे ठीक करके छापते! क्या इस मण्डली को एक भी विद्वान् का सहयोग प्राप्त नहीं!!

कुम्भ के आयोजकों से यह निवेदन प्रारम्भ से ही किया जाता रहा है कि यदि वे एक भी प्रमाण प्रस्तुत कर दें कि किसी भी धर्मशास्त्र में सिमरिया में कुम्भ होने का विधान है या किसी भी इतिहास-ग्रन्थ में यहाँ कभी कुम्भ होने का उल्लेख है, तो हम उनका आदरपूर्वक अनुसरण करने के लिए तैयार हैं; किन्तु ऐसा एक भी प्रमाण नहीं प्रस्तुत हुआ; क्योंकि ऐसा एक भी प्रमाण नहीं है। फिर भी, वे अपने दुष्प्रचार एवं असत्य के आधार पर जनता में भ्रान्ति फैलाते रहे। कुम्भ के आयोजकों को सत्य, इतिहास एवं धर्मशास्त्र से भी कुछ प्रयोजन नहीं था।

अपनी गलत बात को सिद्ध करने के लिए इन आयोजकों ने नकली धर्माचार्यों के समर्थन का दावा करने लगे। ऐसे एक नकली शंकराचार्य का नाम एवं पता निम्नलिखित है- श्री स्वामी महेशाश्रम जी महाराज, श्री आदि शंकराचार्य मठ सनातन ज्ञान पीठ, बड़ीशामी (कुरूक्षेत्र), वर्तमान निवास-नागेश्वर धाम पक्का घाट, रादौर (यमुनानगर) हरियाणा।

इन 'जगद्गुरु शंकराचार्य का नाम उस नगर के निवासियों को भी ज्ञात नहीं होगा, किन्तु कुम्भ के आयोजकों ने इन्हें जगद्गुरु शंकराचार्य प्रचारित करना प्रारम्भ किया। क्या यह जनता को गुमराह करना नहीं है?

भारतवर्ष में कुम्भ आयोजन की गौरवशाली परम्परा रही है और इस परम्परा के अनुसार चार स्थानों पर कुम्भ का आयोजन होता रहा है।

कुम्भ के आयोजन का अधिकार अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के पास है। यह हिन्दू धर्म के सभी सम्प्रदायों की सर्वोच्च संस्था है। यदि सिमरिया में कुम्भ का आयोजन करना था, तो इसके लिए अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् से अनुमति ली जानी चाहिए थी। तब कुम्भ के आयोजकों ने इसकी अनुमति नहीं ली, तब हमने अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के अध्यक्ष माननीय महन्त ज्ञान दासजी को पत्र लिखकर उनसे अनुरोध किया कि अपना मन्तव्य एवं निर्णय जिलाधिकारी, बेगुसराय

एवं राज्य के मुख्य सचिव को भेजें। उनकी ओर से जिलाधिकारी एवं मुख्य सचिव को पत्र लिखकर यह सूचित किया गया कि सिमरिया में कुम्भ का आयोजन वेद, पुराण एवं धर्मशास्त्र के सिद्धान्तों एवं लोकमान्यताओं के विपरीत है; अतः 'इस आशास्त्रीय कार्य को अविलम्ब रोका जाये'।

महान्त श्रीज्ञानदासजी महाराज, अध्यक्ष- अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् का पत्र जिलाधिकारी बेगूसराय के नाम पत्र इस प्रकार है:-

सेवा में,

माननीय जिलाधिकारी
जनपद- बेगुशराय (विहार)

महाशय,

आपसे सविनय आग्रह है कि आगामी अक्टूबर-नवम्बर मास 2011 में कतिपय लोग सिमरिया घाट पर महाकुम्भ मेला लगवाने का दुष्प्रयास कर रहे हैं, जो वेदों, पुराणों तथा धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों व लोकमान्यताओं से सर्वथा विपरीत है।

उक्त क्षेत्र में मात्र कल्पवास की मान्यता रही है, कुम्भ पर्व का आयोजन एक निराधार कल्पना है। उक्त कुम्भ मेले के आयोजन के प्रमुख दिशावाहक लोग भी स्वयंभू शंकराचार्य हैं। देश विदेश की धर्मप्राण जनता इससे दिग्भ्रमित न हो, अतएव आपको सूचित करना परमावश्यक हो गया है। प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक- इन्हीं चार तीर्थों का कुम्भ मेला विश्वप्रसिद्ध है, जो शास्त्रानुमोदित हैं।

आपको ध्यातव्य है कि उक्त चारों स्थानों पर कुंभ मेले के आयोजन का दायित्व 'अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद्' का होता है, जो संतों की सर्वोच्च संस्था है। उक्त प्रत्येक कुम्भ पर्वों पर मेलाधिकारी इसी (अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद्) के समन्वय से मेला की सम्पूर्ण व्यवस्था कराते हैं।

अतः श्रीमान् को परामर्श दिया जा रहा है कि ऐसे अशास्त्रीय कार्य को अविलम्भ रोका जाये।

भावत्कः
(ह.)
श्री महान्त ज्ञानदास
(अध्यक्ष- अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद्)

नकली शंकराचार्यों के कुम्भ विषयक अनुमोदनों के विपरीत हमने असली शंकराचार्यों के पास पत्र भेजकर सिमरिया में कुम्भ-आयोजन के औचित्स पर निर्णय का निवेदन किया। पहले द्वारकापीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य ने निर्णय भेजा कि प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक को छोड़कर कुम्भ कहीं अन्यत्र नहीं लग सकता है। उन्होंने यह भी लिखा है कि बिहार के बेगुसराय में गंगा के तट पर सिमरिया घाट के स्वामी चिदात्मन्जी द्वारा 11 अक्टूबर से 10 नवम्बर, 2011 तक कुम्भ आयोजन की घोषणा ''न केवल अशास्त्रीय है, अपितु परम्परा-विरुद्ध भी है'' और 'जो लोग इस तरह

की घोषणा कर रहे हैं वे इस तरह की घोषणा करने के लिए भी न तो अर्ह हैं और न ही अधिकारी। उन्होंने अपने पत्र के अन्त में लिखा है:-

“ [illegible] ’

इस प्रकार, शृंगेरी पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री श्री भारती तीर्थ महास्वामी ने अपना निर्णय भेजा, जिसमें यह स्पष्ट निर्देश दिया गया कि अनादि काल से कुम्भ मेला केवल चार स्थानों नासिक, उज्जैन, प्रयाग और हरिद्वार पर ही होता आया है; अतः संस्कृति के निर्वाह की दृष्टि से इस परम्परा का पालन ही श्रेयस्कर है। जगद्गुरु के सचिव श्री वी. आर. गौरीशंकर ने पत्र में लिखा है:-

"I am directed by His Holiness to convey that regarding the subject matter of this letter, as per our hallowed tradition, Kumbhamela is conducted only in four Theertha Kshetras, viz. Nasik, Ujjain, Prayag and Haridwar. This practice is there from time immemorial. In the interest of the maintenance of four age-old tradition and customs, it is advisable to continue with this practice only."

इसी प्रकार गोवर्द्धन पीठ, पुरी के शंकराचार्य अनन्तश्री विभूषित स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती महाराज ने भी अपने विद्वत्तापूर्ण निर्णय पत्र में विरोध प्रकट किया है कि “सनातन-शास्त्रसम्मत परम्पराप्राप्त चार धाम और चार कुम्भस्थल हैं। पुरी, रामेश्वरम्, द्वारका, और बदरीनाथ क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और इत्तर में स्थित चार धाम हैं, जो कि ऋक्, यजुः साम और अथर्व से क्रमशः सम्बद्ध हैं। क्रमशः प्रयाग, नासिक, इञ्जयिनी और हरिद्वार चार कुम्भस्थल हैं। कुम्भ का ऐतिह्यकाल इतना ही पुराना है, जितना कि सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का।” आगे महाराज ने शास्त्रीय प्रथा के दोहन को सर्वथा अनुचित मानते हुए अपना निर्णय दिया है कि “ शास्त्र या परम्परा के नाम पर किसी भी प्रथा का दोहन या दुरुपयोग सर्वथा अनुचित है।”

इस प्रकार तीनों मान्य शंकराचार्यों के विरोध के बाद भी सिमरिया में कुम्भ मेले का आयोजन धार्मिक उच्छृंखलता का प्रतीक है, जो मिथिला जैसे धर्मप्राण क्षेत्र के लिए गौरव का विघातक है।

सिमरिया घाट में कुभ/ अर्द्धकुम्भ की घोषणा से मिथिला की पण्डित-परम्परा भी विस्मित एवं मर्माहत है।संस्कृत एवं आधुनिक भाषाओं एवं शास्त्रों के मूर्द्धन्य वयोवृद्ध विद्वान् पं. गोविन्द झा ने इस विषय पर अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की है। उन्होंने अपना पत्र संस्कृत में लिखा है, जिसे अनुवाद के साथ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

महानुभावाः,

केचन पण्डिताः सिमरियाघाटं कुम्भपर्वस्थलं घोषयन्ति तत्र च अर्धकुम्भमेलाम् आयोजयितुं लोकान् प्रेरयन्तीति श्रुत्वा विस्मितोऽस्मि। केचन मम प्रतिवेशिनः तज्ज्ञात्वा तथैव विस्मिताः मां पण्डितं मन्यमानाः मम अभिमतं ज्ञातुम् ऐच्छन्। अतोऽहम् स्वमतं प्रकाशयामि यत् शास्त्रे चत्वारि एव स्थानानि कुम्भपर्वस्नानाय संस्तुतानि, तान्येव च दीर्घपरम्पराया निश्चितानि। संख्यानिर्देशः अधिकव्यवच्छेदकः इति मीमांसायाः सिद्धान्तः अतः पञ्चमं स्थानं न तत्पुण्यप्रदम्। अन्यदपि तादृशं स्थानमिति सूचकं वचनं न क्वापि मया दृष्टम्। यदि

अगाधे शास्त्रे क्वचिद् विरोधो दृश्यते तत्र परम्परा, लोकाचारो, देशाचारो वा नियामको भवति। अतः क्वचिद् दृष्टेऽपि सिमरियाघाटपक्षे तादृशे वचने परम्परा-विरुद्धत्वात् तत् उपेक्ष्यमेव। अलम् अधिकेन। गोविन्द झा भा. कृ. 13 शनौ शक 1933

(अनुवाद- कुछ पण्डितों ने सिमरिया घाट को कुम्भ पर्व का स्थान घोषित किया है तथा वहाँ वे वहाँ कुम्भ मेला आयोजित करने के लिए लोगों को प्रेरित कर रहे हैं, यह सुनकर मैं चकित हूँ। मेरे कुछ पड़ोसियों ने यह जानकर उसी प्रकार चकित होकर मुझे पण्डित मानते हुए मेरा अभिमत जानने की इच्छा की। अतः मैं अपना विचार कहता हूँ कि शास्त्र में चार ही स्थान कुम्भ पर्व में स्नान करने के लिए अनुशंसित हैं और वे ही दीर्घ परम्परा से निश्चित हैं। संख्या द्वारा किया गया निर्देश अधिक (एवं कम) को रोकने के लिए किया जाता है, यह मीमांसा का सिद्धान्त है; अतः पाँचवाँ स्थान वह पुण्य देनेवाला नहीं है। 'वैसे स्थान दूसरे भी हैं' इसे सूचित करनेवाला वचन मैंने कहीं नहीं देखा है। यदि अगाध शास्त्र में कहीं विरोध भी दिखाई देता है तो वहाँ परम्परा, लोकाचार, अथवा देशाचार नियामक होता है। अतः सिमरिया घाट के पक्ष में यदि कहीं वैसा वचन मिलता भी है तो परम्परा के विरुद्ध होने के कारण उसकी उपेक्षा की जानी चाहिए। अधिक कहना व्यर्थ है। - गोविन्द झा, भाद्र कृष्ण त्रयोदशी, शनिवार, शक संवत् 1933 तदनुसार 27 अगस्त, 2011 ई.)

सिमरिया में कुम्भ के आयोजकों ने जोर-शोर से प्रचार-प्रसार किया था कि इसके आयोजन में अखिल भारतीय सन्त समिति का समर्थन प्राप्त है। किन्तु इस सन्त समिति के राष्ट्रीय महामन्त्री स्वामी देवेन्द्रानन्द गिरि ने पत्र द्वारा सूचित किया कि 'हमने इतिहास एवं शास्त्रों को टटोलने के बाद केवल हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक चार जगह ही प्रमाण के साथ महाकुम्भ की परम्परा मिलती है' और 'कहीं भी कुम्भ या अर्द्ध कुम्भ का आयोजन होता है तो उसे अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् की मान्यता आवश्यक होती है।''

कुम्भ के आयोजन के बारे में यह भी जानकारी दी जा रही है कि 5 जून, 1938 ई० को दरभंगा में दरभंगा महाराज के तत्कालीन राज-पण्डित बलदेव मिश्र की अध्यक्षता में मिथिला के धर्मशास्त्री पण्डितों की एक सभा हुई। उसमें उन सभी धर्मशास्त्री पण्डितों को आमन्त्रित किया गया था जिन्हें एक-एक पर्व पर सभी शास्त्रीय पाक्ष्यों का विवेचन कर अपना निर्णय लिखने को कहा गया था। राज पुस्तकालय, दरभंगा में हुई इस गोष्ठी में उन सभी लेखों की प्रामाणिकता की समीक्षा करने के लिए कुछ मूर्द्धन्य विद्वानों की समिति बनायी गयी। इस समिति ने 5 जून से 14 जून 1938 तक सभी प्रमाणों का विवेचन कर लेखों में संशोधन/परिष्कार करने के बाद उन लेखों की प्रामाणिकता पर मुहर लगायी। उसके बाद पर्व-निर्णय नाम से पुस्तक कुशेश्वर (ठाकुर) शर्मा के सम्पादन में तैयार की गयी। इस पुस्तक में कुल 83 पर्वों पर निर्णयात्मक लेख हैं। इस पर्व-निर्णय का 79वाँ विषय है ''कुम्भ-पर्व-निर्णय' जिसके नियामक हैं- कुशेश्वर (ठाकुर) शर्मा हैं। इस पुस्तक की भूमिका सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य-न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती लिखी है और पुस्तक भारत सरकार के शिक्षा-विभाग के अनुदान से वाराणसी से छपी है। ये सारे निबन्ध संस्कृत में हैं; किन्तु उनका सारांश पुस्तक के प्रारम्भ में अंग्रेजी में दिया हुआ है। इससे निम्नलिखित अंश उद्धृत है-

"This parva occurs once in twelve years and is held only in four places, namely, Haridwar, Prayãga, Dhãrã Avantika (Ujjain) and the banks of the river Godavari where the pitcher containing nectar touched the land."

संस्कृत में यह श्लोक है-

गंगाद्वारे प्रयागे च धारा-गोदावरी तटे।

कलशाख्यो हि योगोऽयं प्रोच्यते शंकरादिभिः॥

यानी गंगाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग, धारा (उज्जैन), गोदावरी तट (नासिक) में ही कुम्भ का योग होता है।

कुछ लोग बारह स्थानों पर कुम्भ का जो दावा करते हैं, उसके बारे में इस लेख में निर्णय दिया गया है कि धरती पर तो चार ही हैं; शेष आठ दूसरे लोक में बतलाये जाते हैं- ''अष्ठौ लोकान्तरे प्रोक्ताः''।

कुम्भ पर्व के शास्त्री स्वरूप के सम्बन्ध में म०म० पाण्डुरंग वामन काणे ने अपनी विख्यात पुस्तक 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में लिखा है-

''यह बारह वर्ष में एक बार होता है। सूर्य एवं चन्द्र मकर राशि में होते हैं, बृहस्पति वृषभ में होता है, अमावास्या होती है। इसे कुम्भयोग कहते हैं। प्रयाग में इस काल का स्नान एक सहस्र अश्वमेधों, एक सौ वाजपेयों तथा पृथिवी की एक लाख प्रदक्षिणा करने से प्राप्त पुण्य के बराबर फलदायक होता है। यह तीन भागों में होता है- मकरसंक्रान्ति, अमावास्या (जो प्रमुख है और पूर्णकुम्भ कहलाती है) एवं वसन्तपञ्चमी। कुछ लोगों के मत से तीन दिन यों है- मकरसंक्रान्ति, पौष-पूर्णिमा एवं अमावास्या। कुछ अन्य कुम्भ-योग भी हैं, हरिद्वार में जब बृहस्पति कुम्भ राशि में होता है और सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है; नासिक में जब कि बृहस्पति सिंह राशि में, सूर्य एवं चन्द्र कर्कट में होते हैं तथा उज्जैन में जब कि सूर्य तुला में एवं बृहस्पति वृश्चिक में होता है।''

धर्मशास्त्र का इतिहास (तृतीय भाग)

मिथिला के मूर्द्धन्य पण्डितों का निर्णय अब कुछ प्राध्यापकों द्वारा बिना किसी प्रमाण के निरस्त किया जा रहा है। सेमरिया घाट में कुम्भ पर्व होने का न कोई शास्त्रीय विधान है और न ही ऐतिहासिक उल्लेख। यहाँ तक कि फ्रांसीस बुकानन ने 1810 ई० के पास बेगुसराय का सर्वेक्षण किया। बेगुसराय जिले में सिमरिया घाट की चर्चा तक नहीं है। ब्रिटिश काल में प्रकाशित सभी जिला राजपत्रों (गजेटियर) में मेलों, उत्सवों की चर्चा विस्तारपूर्वक की जाती रही है; किन्तु सिमरिया कल्प-वास का उल्लेख तक कहीं नहीं है। सिमरिया का प्रथम उल्लेख रेल-लाइन के विस्तार के सिलसिले में 1884 ई० में मिलता है और 1910 ई० में सिमरिया में कल्पवास का उल्लेख मिलता है। बाद में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का जन्म स्थान होने के कारण इसके गौरव एवं प्रसिद्धि में वृद्धि हुई। सिमरिया में कल्पवास की मोक्षदायिनी परम्परा को अक्षुण्ण रखें। प्रतिवर्ष यहाँ हजारों भक्त मोक्ष की कामना के साथ कार्तिक में एक मास का कल्प-वास करते हैं जिसमें वे शान्ति के साथ ईश्वर का भजन, ध्यान करके परमानन्द का लाभ उठाते हैं। कृपया इस आध्यात्मिक शान्त वातावरण में अपनी आय बढ़ाने के लिए नकली कुम्भ का आयोजन कर कल्पवासियों की साधना में व्यवधान डालने का प्रयत्न न किया जाये।

इस आलेख के प्रकाशित होते होते एक सूचना मिली है कि दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय के कुछ अध्यापकों ने मिलकर 'रुद्रयामलोक्त अमृतीकरणप्रयोग' नामसे एक पुस्तिका का प्रकाशन किया है, जिसमें संस्कृत के लगभग 150 श्लोक हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित हैं। इसमें सिमरिया में कुम्भ होने की बात कही गयी है। इसकी प्राचीन पाण्डुलिपि की कोई छायाप्रति इसमें प्रकाशित नहीं है; अतः इस पुस्तिका की प्रामाणिकता निर्दुष्ट नहीं है। बल्कि इसे 'प्रज्ञापराध' की कोटि में रखा जा सकता है। इस पुस्तिका का अवलोकन करने के बाद इसपर विशेष प्रकाश देना सम्भव होगा।

❖

श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता

डॉ. सीताराम झा 'श्याम'

महर्षि वेदव्यास ने 'महाभारत' के भीष्मपर्व के पच्चीसवें अध्याय से लेकर बयालीसवें अध्याय तक के कुल अठारह अध्यायों के सात सौ श्लोकों के अन्तर्गत वेदोपनिषद् के तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण जिस अप्रतिम दर्शन का अति प्रभावक निरूपण पुण्यभूमि कुरुक्षेत्र में परम गुरु भगवान् श्रीकृष्ण एवं महान् जिज्ञासु अर्जुन के आकर्षक संवादों द्वारा किया, वह 'श्रीमद्भगवद्गीता' के नाम से विश्वविख्यात है।

यद्यपि गीता में ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि का विस्तृत तथा सुगम्भीर विवेचन किया गया है, तथापि इसका अल्प अध्ययन अथवा श्रवण भी परम मंगलदायक है- **'भगवद्गीता किञ्चिदधीता गंगाजललव-कणिकापीता'** ('मोह-मुद्गर' या भज गोविन्दम् स्तोत्र) कहकर आदिशंकराचार्यजी ने इसका महत्त्व-प्रतिपादन कर दिया है।

'महाभारत' में गीता का उपसंहार लिखते हुए वेदव्यासजी ने पूर्ण आत्मविश्वास से इस सत्य की घोषणा कर दी थी कि 'श्रीमद्भगवद्गीता' को हृदयंगम कर लेने पर अन्य शास्त्रों को जानना अपेक्षित नहीं रह जाता, क्योंकि पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से निःस्सृत अमृतवाणी सुनने तथा तदनुकूल आचरण करने से जीवन सफल सार्थक हो जाता है :

'गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता।।'

निस्सन्देह, वेद के बाद विश्व के महान् ग्रन्थों में 'गीता' की गूँज सर्वाधिक है। औपनिषदिक चिन्तन-परम्परा में रचित यह सद्ग्रन्थ मानव-जीवन का शाश्वत मार्गदर्शन करनेवाला है। युग-परिवर्तन इसके महत्त्व को कम नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण की ऐसी विराजता और व्यक्तित्व की विविधता है कि किसी एक व्यक्ति के लिए इनके विविध रूपों को एक साथ देख पाना और पचा पाना सम्भव नहीं है। एक ओर कृष्ण रासेश्वर हैं तो दूसरी ओर योगेश्वर हैं। एक ओर तरल, कोमल तो दूसरी ओर मणि सदृश उज्ज्वल किन्तु कठोर।

इसी योगेश्वर कृष्ण की वाणी गीता शाश्वत जीवन दर्शन का अमर गान है। प्रस्तुत है यहाँ वन्देमातरम्-भवन, ब्रिटेन में नवम्बर, १९८७ में डॉ. सीताराम झा 'श्याम' द्वारा दिए गए गीता-प्रवचन का अंश।

जीवन का परम कल्याण कैसे हो सकता है?--यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसकी प्रासंगिकता सभी कालों में बनी रहेगी। किस काल में कौन नहीं अपना परम हित चाहेगा? जीवन का चरम लक्ष्य है यह। इस सम्बन्ध में अर्जुन द्वारा बारबार पूछे जाने पर निष्कर्ष रूप में भगवान् श्रीकृष्ण ने यही बताया कि निष्काम कर्म अर्थात् निश्छल भक्ति से ही परम कल्याण हुआ करता है। निस्सन्देह, परमात्मा को छोड़कर परम कल्याण का प्रदाता दूसरा

नहीं हो सकता। गीता-उपदेश को किसी भी रूप में विवादास्पद बनाना अभिज्ञता का सूचक नहीं, अपितु अज्ञता का द्योतक माना जाएगा। परावाणी की सत्यता का परीक्षण बैखरी वाणी की भूलों से नहीं किया जा सकता। परन्तु, आज के युग में गीता-अध्ययन की उपादेयता पर विचार करना निश्चय ही बौद्धिक जागरूकता तथा सामाजिक सजगता का सूचक है। साथ ही, श्रेष्ठ ग्रंथ का यह अन्यतम वैशिष्ट्य माना जाता है कि वह हर युग को प्रभावित करने की क्षमता रखता है।

वस्तुतः, वर्तमान समय में सर्वत्र अव्यवस्था और अशान्ति व्याप्त है। सम्पूर्ण विश्व आतंकवाद से त्रस्त और परमाणु अस्त्रों से भयाक्रांत है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक,आर्थिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में विघटन- ही-विघटन दिखाई पड़ रहा है। सहअस्तित्व कहीं रह नहीं गया। सद्भाव, सौहार्द, संवेदना, सहानुभूति, सत्य, त्याग, परोपकार, दया, नैतिकता आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों का सर्वथा अभाव होता जा रहा है आज के वैश्विक परिदृश्य में। जिधर देखिए, उधर ही भ्रष्टाचार और बेईमानी का साम्राज्य है। ऐसी विषम तथा विकट परिस्थिति में गीता का सन्देश कितना ग्राह्य और कहाँ तक प्रभावकारी हो सकता है,अभी इसी का विवेचन और विश्लेषण करना अभीष्ट है।

महान् शान्तिदूत थे भगवान् श्रीकृष्ण। पाण्डवों की ओर से जो प्रस्ताव रखा था उन्होंने, उसमें त्याग का आधिक्य था, सौहार्द का प्राधान्य था, जिससे पारस्परिक कटुता दूर हो जाए और युद्ध का संकट उत्पन्न ही नहीं हो। इसलिए, पहले युद्ध कैसे आरम्भ करते वे? शान्ति के प्रतीक सफेद घोड़ों के रथ पर वे निर्विकार भाव से बैठे थे धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में, जहाँ ब्रह्मदेव, अग्निदेव एवं अन्य ऋषि-मुनियों ने ब्रह्म सरोवर तथा सूर्यकुण्ड के समीप विश्वकल्याण के निमित्त अनेक यज्ञ सम्पादित किए थे। परन्तु, ललकार को वे कैसे सहन करते? ललकार को सहन करना तो कायरता है, वीरता नहीं। अतएव, जब दुर्योधन को युद्धभूमि में उतारने के उद्देश्य से पहले शंख फूँका भीष्म पितामह ने, तब कृष्ण ने भी पाञ्चजन्यशंख का प्रयोग किया और अर्जुन का देवदत्तनामक शंख भी बज उठा। सकलशास्त्र-मर्मज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण ने वेद-निर्देश का पालन किया। यजुर्वेद डिण्डिमनाद के साथ कहता है: '**धूर्वन्तं धूर्व**', **'योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व।**'-(शुक्ल यजुर्वेद,१.८)। अर्थात्, जो आततायी आक्रमण करता है, उसे ध्वस्त कर दो। उसका अस्तित्व मिटा दो।

कुरुक्षेत्र में महर्षि व्यास ने अर्जुन के माध्यम से मानसिक द्वन्द्व का अत्यन्त मार्मिक दृश्य उपस्थित किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने रथ को युद्धभूमि के बीच में खड़ा कर दिया। अर्जुन को परिजन-पुरजन का मोह हो रहा है। आखिर, युद्धभूमि में एकत्र सभी प्रतिपक्षी अपने ही तो हैं, फिर युद्ध किससे? उन्होंने धनुष-बाण फेंक दिया और रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गए वे। युग कोई भी हो, संसार है, तो उसमें मोह,लोभ, क्षोभ, यश, अपयश, मान, अपमान, राग, विराग, सत्, असत्, त्याग, ग्रहण, शुभ, अशुभ, उचित, अनुचित आदि का विचार सामने आएगा ही। परन्तु, जब जीवन में कायरता आ जाए-- विशेषकर युद्ध भूमि में, तब जीवित रहने का अर्थ क्या रह जाएगा? अतः, मोह तथा कायरता का त्याग करने के लिए अर्जुन से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा

'कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।'

--गीता,२.२

विषम स्थल अर्थात् युद्धभूमि में अज्ञान कहाँ से आ गया अर्जुन के सामने? मोहवश कर्म का त्याग करना न तो श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण रहा है, न स्वर्ग का प्रदाता है यह और न ही कीर्ति बढ़ानेवाला है।

शिष्य को स्नेह से समझाने के साथ-साथ कभी-कभी उस पर बिगड़ना भी पड़ता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने तीव्र स्वर में अर्जुन से कायरता का त्याग करने के लिए कहा :

'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युप पद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।।'

-श्रीमद्भगवद्गीता, २.३

अर्थात्, तपोनिष्ठ अर्जुन! कायरता को मत प्राप्त हो। यह तेरे व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं है। दुर्बलता तो उनके हृदय में निवास करती है, जो नीच होते हैं-- कायर होते हैं। तुम तो सच्चे वीर हो। इसलिए, दुर्बलता को छोड़ो। युद्ध के लिए खड़े हो जाओ। पूर्ण तत्परता का परिचय दो।

सचमुच, हमारी गौरवमयी परम्परा सदा सावधान रहने की रही है, सतत जागते रहने की रही है और पूरी सतर्कता से अपने आदर्श को प्राप्त करने के लिए अतुलनीय वीरता का परिचय देते रहने की रही है। अज्ञान, कायरता तथा अदूरदर्शिता को दूर करने के लिए ही तत्त्वज्ञों ने कहा पर्याप्त बल देकर-- उठो, जागो, विज्ञों से सही ज्ञान प्राप्त करोः

'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'

--कठोपनिषद्, १.३.१४

कायरता से प्रतिहत अर्जुन ने हाथ जोड़ कर भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा : सफल जीवन के लिए किस साधन को सर्वोत्तम माना गया है? परम कल्याण का मार्ग कौन-सा है? मुझे कृपापूर्वक बताइए-- शाधि अर्थात् शिक्षा दीजिए :

'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।'

-गीता,२.७

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया कि अपने कर्त्तव्य का पालन करने से ही मनुष्य का परम कल्याण होता है। वह कर्मफल का स्वयं अधिकारी नहीं होता। फिर, उसमें न तो कर्मफल के प्रति आसक्ति रहनी चाहिए और न ही अकर्मण्य बन जाने की इच्छा। करणीय कार्य को सम्पन्न करना ही उसका उद्देश्य होना चाहिए :

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।'

-गीता,२.४७

सच तो यह है कि कर्मानुसार तो फल मिलता ही रहता है, फिर उसकी चिन्ता क्यों की जाए? शुभ सत्कर्म का सम्पादन ही प्रमुख है। भगवान् श्रीराम ने भी यही कहा है :

'कर्मभूमिमिमां प्राप्य कर्त्तव्यं कर्मयच्छुभम्।
अग्निर्वायुश्च सोमश्च कर्मणां फलभागिनः।।'

--श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, २.१०६.२८

जीवन में कभी-कभी ऐसे भी अवसर आ जाते हैं, ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो जाती हैं, कर्म की दिशाएँ ऐसी हो जाती हैं कि कौन-सा कार्य करणीय है और कौन-सा अकरणीय, इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है-- विद्वान् भी द्विविधा में पड़ जाया करते हैं :

'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।'

--गीता,४.१६

निस्सन्देह, कर्म की प्रकृति बहुत जटिल होती है- 'गहना कर्मणो गतिः'(गीता,४.१७)। इसीसे भगवान् श्रीकृष्ण स्पष्ट शब्दों में निर्देश करते हैं कि कर्म सदा शास्त्र-विहित होना चाहिए--शास्त्र-सम्मत कर्म ही सही अर्थ में कर्म माना जाता है :

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।'

--श्रीमद्भगवद्गीता, १६.२४

ध्यातव्य है कि श्रद्धा से ही शास्त्रज्ञान प्राप्त होता है अथवा शास्त्र के प्रति सच्चे सम्मान का भाव उदय हो पाता है :

'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्।'

--श्रीमद्भगवद्गीता,४.३६

चूँकि आज श्रद्धा में कमी आ गई है, इसलिए सही सात्त्विक ज्ञान भी नहीं प्राप्त हो रहा है। इसका सबसे बड़ा

दुष्परिणाम यह हुआ है कि घर से लेकर अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अनुशासनहीनता व्याप्त है। गीता की प्रासंगिकता इस दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। श्रद्धा के अभाव में निश्छल अविचल भक्ति नहीं हो सकती--सही सेवा-भावना न तो ईश्वर के प्रति हो सकती है, न देश के प्रति और न ही समाज के प्रति। स्वार्थ और केवल स्वार्थ की मनोवृत्ति विकसित होने का मूल कारण गीता-ज्ञान का अभाव ही है। फिर तो समाज में असंतुलन और अव्यवस्था आ जाने से--अनुशासन का सौरभ नहीं रह जाने से चारों ओर सड़ांध-ही-सड़ांध रहेगी। इसीसे आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सभी स्तरों पर अशिष्टता, अयोग्यता और भ्रष्टाचार का ही बोलबाला है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अनेक अवसरों पर कर्मयोग की जो दिव्य शिक्षा प्रदान की है, उसमें श्रद्धा, संयम और आत्मानुशासन पर बहुत बल दिया गया है। निष्कामकर्म तभी किया जा सकता है, जब प्राणी मन एवं इन्द्रियों को वश में रखते हुए विशुद्धा अन्तःकरणवाला बन जाए और सर्वतोभावेन ईश्वर को समर्पित होकर ही कोई काम करे-'मच्चित्तः सततं भव' का निर्देश (गीता,१८.५७) भगवान् ने स्वयं किया ही है। भक्ति की अनन्यता से जीवन में आसक्ति के लिए कोई स्थान नहीं बच जाएगा और इस प्रकार व्यक्ति सही अर्थ में निष्काम कर्मयोगी बन जाएगा- सेवाव्रत अपना कर जीवन को धन्य बना लेगा :

'योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।'

-गीता,५.७

'श्रीमद्भगवद्गीता' में इस बात का बहुत ध्यान रखा गया है कि समाज में सुविधाभोगी और अकर्मण्य को सम्मान नहीं मिलना चाहिए। इसीसे भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्मयोगी होना संन्यासी का प्रमुख लक्षण बताया है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि जो घर का त्याग कर दे, गेरुआ वस्त्र पहन ले, चूल्हा न जलाए, कोई कार्य न करे, वह संन्यासी है। परन्तु, भगवान् श्रीकृष्ण संन्यास की उस परिभाषा को सही नहीं मानते। वे संन्यासी उसे कहते हैं, जो करने योग्य कार्य करे अर्थात् वेद-विहित सत्कार्य--प्रशस्ततम कर्म करे, जिससे संसार का अभ्युदय हो। कर्मफल के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति तो रहे ही नहीं :

'अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।'

-गीता,६.१

योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने जीवन की सही दिशा का निर्देश करते हुए कहा है कि प्राणी को सदा निर्भय रहकर तथा अन्तःकरण को स्वच्छ-सरल रखकर स्वधर्म पालन करते हुए संयम-नियमपूर्वक निरन्तर प्रगति-पथ पर अग्रसर होते रहना चाहिए :

'अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।'

-गीता, १६.१

यह परम सत्य है कि भगवान् का भक्त कभी असफल नहीं होता, कभी विनष्ट नहीं हो सकता। परब्रह्म श्रीकृष्ण ने स्वयं यह कहा है :

'न मे भक्तः प्रणश्यति।'

-गीता, ६.३१

परन्तु, वर्तमान समय में होड़ लगी है सत्य-मार्ग पर चलने के बदले असत्य-मार्ग पर चलने की। लोग चरित्र, स्वाभिमान और ईमानदारी का नाम सुनते ही चौंक जाते हैं जैसे। नैतिकताविहीन राजनीति विद्वत्ता, कार्यक्षमता तथा मनुष्यता का सबसे बड़ा शत्रु बन गई है। इसलिए, सत्य, न्याय और आचार के प्रति सतर्कता बरतनी है। आवश्यकता है गीता-ज्ञान से इस तत्त्व को समझने की कि असत् का कोई अस्तित्व नहीं होता और सत् का कभी अभाव नहीं हो पाताः

'ना सतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'

-श्रीमद्भगवद्गीता,२.१६

निस्सन्देह, संसार के सभी पदार्थ नश्वर हुआ

करते हैं। तब वह कौन-सा तत्त्व है, जो सभी कालों में सर्वत्र विद्यमान रहता है? इसी मूल प्रश्न का परिज्ञान कराता है गीता-दर्शन। आध्यात्मिक ज्ञान से ही कोई सही अर्थ में ज्ञानवान् हो सकता है। सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त हो जाने से नाशवान् संसार में भी अविनाशी परमेश्वर को देखना संभव है और इसी देखने को देखना अर्थात् सम्यक् ज्ञान कहा गया है:

'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।'

-श्रीमद्भगवद्गीता, १३.२७

जीवात्मा के शरीर-परिवर्तन को बड़े प्रभावक रूप में अत्यन्त कुशलता से भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं, जो सभी कालों में सब के लिए परम ग्राह्य है- उसकी प्रासंगिकता सभी युगों में बनी रहेगी।

भगवान् श्रीकृष्ण पूछते हैं अर्जुन से, उनके मोह-शोक को दूर करने के उद्देश्य से बताते हैं, बड़ा ही सटीक दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं : फटे- पुराने वस्त्रों के बदले सुन्दर नए वस्त्रों को धारण करना प्रसन्नता का विषय है अथवा अप्रसन्नता का?--निश्चय ही प्रसन्नता का। इसी प्रकार, जीर्णशरीर को त्याग कर नूतन शरीर को धारण करना भी सुख-आनन्द का ही विषय है। तब मृत्यु से भय क्यों हो और शोक भी क्यों किया जाए?-

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।'

-श्रीमद्भगवद्गीता,२.२२

आत्मा की महती विशेषता यह है कि इसे शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, पानी भिगो नहीं सकता और हवा सुखा नहीं सकती :

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।'

-गीता,२.२३

मनुष्य गलत काम करता है और भीतर से भयभीत रहता है। इसीसे उसे आत्मा की अमरता का आभास तक नहीं हो पाता। निर्भय हुए बिना आत्मतत्त्व का बोध नहीं हो सकता। अतः, आसक्ति न रखते हुए सही कार्य ही करना चाहिए, जिससे कभी किसी प्रकार की घबराहट न हो-'मुक्तसंगः समाचर।'-गीता,३.९

गीताशास्त्र कर्मठता का उत्कृष्ट परिचय देने के लिए व्यक्ति को प्रोत्साहित करता है, उसे कर्म-निरपेक्ष बनने का सन्देश कभी नहीं देता । यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी किसी भी काल में कर्म के बिना नहीं रह सकता :

'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।'

-गीता, ३.५

कर्म, वेद, परमात्मा तथा यज्ञ में समवाय सम्बन्ध है। वेद से कर्म का उद्भव है एवं परमात्मा से वेद प्रकट हुआ। फिर, परमात्मा यज्ञ में प्रतिष्ठित है और यज्ञ कर्म पर आधृत :

'कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।'

-गीता, ३.१५

वर्तमान समय में कभी धर्म के प्रति श्रद्धा दिखाई पड़ती है,तो कभी नहीं। सम्यक् ज्ञान के अभाव में व्यक्ति की बुद्धि स्थिर नहीं रहती। कुछ लोग धर्मतत्त्व से सर्वथा अपरिचित रहने के कारण उसके महत्त्व को नहीं समझ पाते। इसके अतिरिक्त, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो लोभवश किसी अन्य धर्म-पद्धति को अपना लेते हैं। पर, 'श्रीमद्भगवद्गीता' में इस बात पर बहुत बल दिया गया है कि स्वधर्म-पद्धति की श्रेष्ठता तथा परधर्म-पद्धति की भयानकता से मनुष्य को अवश्य अवगत रहना चाहिए :

'श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।'

-गीता,३.३५

अतएव, अपने धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा अवश्य रहनी चाहिए, प्रगाढ़ प्रेम अवश्य होना चाहिए, अन्यथा उसका दुष्परिणाम अनिवार्यतः भोगना पड़ता है।

'श्रीमद्भागवत-महापुराण'- १.१८.४५ में बड़ी स्पष्टता से इस बात की चर्चा की गई है कि धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं रहने पर मनुष्य कुत्तों और बन्दरों के समान वर्णसंकर हो जाते हैं:

'तदाऽऽर्य धर्मश्च विलीयतेनृणां
वर्णाश्रमाचार युतस्त्रयीमयः।
ततोऽर्थ कामाभि निवेशितात्मनां
शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः।।

वर्णसंकरता निश्चय ही मनुष्यता के लिए सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध होती है। ऐसा होने से समाज में उच्छृंखलता व्याप्त हो जाती है-- मर्यादाएँ नष्ट होने लगती हैं और मानव-जीवन का आदर्श समाप्त हो जाता है। इसीलिए, वर्णसंकरता से सदा बचना चाहिए। इसीमें अपना और समाज का हित निहित है। युद्ध-जन्य संकटों में वर्णसंकरता के महान् संकट की ओर अर्जुन का भी ध्यान गया था, जो समाजशास्त्रीय दृष्टि से अत्यन्त विचारणीय है। कारण यह कि वर्णसंकरता मानव-समाज के मूल वैशिष्ट्य को ही विनष्ट कर डालती है- सनातन कुलधर्म और जातिधर्म का अपना स्वरूप ही समाप्त हो जाता है :

'दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।।'

-गीता,१.४३

सचमुच, मनुष्य महान् बनता है प्रशस्त कर्म से। अपने विशिष्ट गुण एवं धर्म-सम्मत कार्य से ही कोई सही अर्थ में महत्ता के शिखर पर पहुँच पाता है। ध्यातव्य है कि धर्म के बिना उत्कृष्ट कार्य नहीं हो सकता। इसीसे धर्म अर्थात् श्रेष्ठ आचरण का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। हर मनुष्य स्वतंत्र है, पर श्रेष्ठ सामाजिक मान्यताओं को नहीं मानने के लिए वह स्वच्छन्द नहीं है--मर्यादा का उल्लंघन जीवन के लिए बड़ा घातक होता है। उच्च विचार और निष्कलुष चिन्तन के अभाव में सरकार ने कुछ ऐसे कानून बना दिए हैं, जो भारतीय समाज-विन्यास के अनुरूप नहीं हैं। उन नियमों के कारण उच्छृंखलता बढ़ी है, वर्णसंकरता में वृद्धि हुई है। अतः, वर्तमान समय में आवश्यकता है इस ओर विशेष ध्यान देने और अत्यधिक सतर्कता बरतने की।

निराधार है वर्ण-विधान का विवाद। सम्यक् ज्ञान के अभाव में उसका गलत विश्लेषण किया जा रहा है। उसका सही विवेचन गीताशास्त्र के आधार पर किया जा सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने वर्ण-विधान में गुण-कर्म को ही महत्त्वपूर्ण माना है, किसी अन्य तत्त्व को नहीं:

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।'

-गीता,४.१३

सम्यक् कर्म ही धर्म है। अतः, धर्म में पूर्ण आस्था का न होना मानव-जीवन की श्रेष्ठता से च्युत होना है। पतन का सूचक होता है धर्म का ह्रास। इसीसे धर्म के मार्ग में आनेवाले संकटों को दूर करने, उसे अनर्गल विचारों से अप्रभावित रखने तथा अधर्म-वृद्धि- अत्याचार, अनाचार, दुराचार को रोकने के लिए परमात्मा स्वयं ध रती पर अवतरित हो जाया करता है। भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे ही पूर्णावतार हैं। इसलिए, उनका कोई भी आश्वासन, किसी भी प्रकार का कथन सत्य तथा दायित्वचेतना से परिपूर्ण होता है। ईश्वर न तो मिथ्या आश्वासन देता है, न गलत प्रलोभन देता है और न ही अनर्गल घोषणा करता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' हर युग को यह विश्वास दिलाती है कि धर्मरक्षक भगवान् श्रीकृष्ण परिस्थिति की गम्भीरता को देखकर स्वयं प्रकट हो जाया करते हैं। त्रिकाल सत्य है उनका वचनः

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।'

-गीता,४-७

वर्तमान समय में सही आध्यात्मिक चेतना के

अभाव में अधिकांश लोग गुण-कर्म की उपेक्षा कर निंद्य उपायों से स्वार्थपूर्त्ति में लगे हैं- अयोग्यता को छिपाने के लिए गलत कानून बनवा रहे हैं- अशोभन, अमर्यादित, अनुचित कार्य करते हैं-- मिथ्या-कथन, स्वाभिमान-त्याग, चाटुकारिता, उत्कोच-जैसे दूषित कर्म करने में भी संकोच नहीं करते।

समाज को अशांत, असंतुलित, अनुशासनहीन और सभी दृष्टियों से अव्यवस्थित बनाने में ही अपनी सफलता समझते हैं वे। ज्ञातव्य है कि परिस्थिति की प्रतिकूलता को अनुकूलता में परिवर्तित करने के उद्देश्य से-विसंगतियों को दूर करने के अभिप्राय से-सज्जनों को सम्मानित, धर्म को स्थापित और समाज को व्यवस्थित करने का संकल्प लेकर भगवान् स्वयं प्रकट हो जाया करते हैं-- जिस युग में जैसा प्रयोजन पड़े :

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।'

-गीता,४.८

जन्म-मरण का प्रश्न भी सभी युगों के सामने आता ही रहेगा। आखिर जन्म कर्म का ही परिणाम होता है। मरण के पूर्व विसर्ग अर्थात् यज्ञ, दान, होम आदि सत्कर्म करना तो वांछनीय है ही- मरण के समय विशेष रूप से क्या करना चाहिए? भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्राणी भगवान् का स्मरण करता रहे, नाम-जप करता रहे, फिर मरण कभी, कहीं और किसी भी स्थिति में क्यों न हो- उत्तरायण हो अथवा दक्षिणायन, देश हो या विदेश परमात्मा उसका कल्याण करते ही हैं- अनन्त सूर्य के समान प्रकाशवान् परब्रह्म के मार्ग में अंधकार किसी भी प्रकार विघ्न नहीं उपस्थित कर सकता। परमात्मा अविद्या से सर्वथा परे जो है :

'कविं पुराण मनुशासितारम-
णोरणीयांस मनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातार मचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात।।'

-श्रीमद्भगवद्गीता, ८.९

यह विडम्बना ही है कि वर्तमान वैज्ञानिक युग में मनुष्य की दृष्टि संकीर्ण बनती जा रही है। उसे यह भी नहीं पता है कि वह जिस अंशी का अंश है, वह व्यापक और विराट् है। इसलिए, उसे 'श्रीमद्भगवद्गीता' के दिव्य प्रकाश में परमात्मा के विराट् रूप के दर्शन का प्रयास करना चाहिए, जिससे उसका अज्ञान दूर हो जाए-- 'खाओ, पीओ, मौज करो' की पशु-तुल्य संकुचित मनोवृत्ति से बाहर निकल आए और जीवन-विस्तार का अनुभव कर सके। दृष्टि की व्यापकता से ही अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में अनेक देवता, समस्त प्राणी, कमल के आसन पर विराजमान ब्रह्माजी, भगवान् शंकर, सभी ऋषि और दिव्य सर्प दिखाई पड़े :

'पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।'

-गीता, ११.१५

दिव्य दृष्टि का वैशिष्ट्य यह रहा कि किसी एक ही अंश में समस्त लोक--सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड दिखाई पड़ गया। महाकवि तुलसीदासजी ने भी 'श्रीरामचरितमानस'-१.२०१ में भगवान् श्रीराम के उसी अखण्ड-- विराट् रूप की व्यंजना की है, जिसे देखकर माता कौशल्याजी पुलकित होने के साथ-साथ आश्चर्यचकित भी हो गई थीं:

'देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।।'

वस्तुतः, विराट् भगवान् के अनेक हाथ, पैर, पेट, मुख, नेत्र हैं-- उनका न आदि है, न मध्य और न ही अन्त अर्थात् सभी लोक उसी में समाहित हैं। यह विराट् रूप मनुष्य के अहंकार-त्याग के लिए पर्याप्त नहीं है क्या?

'अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।

नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।।'

-गीता, ११.१६

जिज्ञासु अर्जुन के इस अलौकिक अनुभव से वर्तमान विश्व को यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि वह अपनी दृष्टि को संकीर्ण न बनाकर व्यापक बनाए। विराट्-दर्शन से जीवन को नया विस्तार मिलता है। सचमुच, भगवान् श्रीकृष्ण ही जानने योग्य हैं- वे ही अक्षर, अविनाशी, अव्यय, अनादि धर्म के रक्षक, सनातन पुरुष, सभी लोकों के आश्रय, परब्रह्म परमेश्वर परात्पर परमात्मा हैं :

'त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।'

-गीता,११.१८

परन्तु, वर्तमान समय में लोग 'विश्वरूप' की स्तुति करने के बदले -- जीवन को उच्चस्तरीय बनाने के बदले क्षणिक लोभ के कारण नीचों की स्तुति कर जीवन को नष्ट कर रहे हैं। श्रीमद्भगवद्गीता की स्पष्टोक्ति है कि अपने ज्ञान पर विश्वास नहीं रखने पर, स्वाभिमान को तिलांजलि दे देने पर,सत्वभाव को महत्त्व न देकर रजोगुण और तमोगुण की शरण में चले जाने पर दुर्दशा अवश्यंभावी है :

'सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।।
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।'

-गीता, १४.१७-१८

अतएव, वास्तविक उन्नयन के लिए, जीवन के परमलक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परमात्मा का ध्यान ही सर्वोत्तम साधन है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अन्य सभी उपायों एवं आश्रयों को छोड़ कर जो मेरी शरण में आ जाता है, उसे मैं अपना लेता हूँ और समस्त ताप-पापों से मुक्त कर देता हूँ :

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।'

-गीता १८.६६

सच तो यह है कि जहाँ हनुमद्ध्वज के साथ योगेश्वर परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जहाँ कृष्ण के अनन्य भक्त गाण्डीव धनुषधारी वीर अर्जुन हैं, वहीं लक्ष्मी, विजय, विभूति और अचल दिव्य नीति रहा करती है:

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

-गीता, १८.७८

ईश्वर में पूर्ण आस्था तथा विश्वास हो जाए और आसक्ति-रहित होकर सेवा-भावना से काम करने की प्रबलतम प्रेरणा मिलती रहे, तो गीता के अध्ययन-श्रवण की इससे अधिक उपयोगिता और क्या हो सकती है?

निष्कर्षतः, 'श्रीमद्भगवद्गीता' का शाश्वत संदेश यह है कि मनुष्य अपने को कर्त्ता एवं भोक्ता नहीं मानकर निमित्तमात्र समझे। इससे अहंकार का निरसन अपने आप हो जाता है और मानव सरल हृदय बन जाता है। सरल हृदय को भगवान् तुरंत अपना लेते हैं--उसके जीवन के सम्यक् विकास का दायित्व स्वयं ले लेते हैं। यज्ञ में **'इदन्न मम'** बोलने और नैवेद्य चढ़ाते समय **'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'** कहने का अभिप्राय भी अहंकार से दूर रहना ही है।

समन्वय का संगीत है 'गीता'। इसमें ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के अद्भुत सामंजस्य का गायन है भगवान् श्रीकृष्ण के पावन मुख द्वारा। इसीसे परावाणी में सम्प्रेषित विचार कभी पुराना अथवा अप्रासंगिक नहीं हो सकता। सम्यक् ज्ञान वही है, जिसमें किसी प्रकार का विकार न हो। सच्चा कर्म भी वही है, जो शास्त्र-सम्मत हो अर्थात् भगवान् को प्रिय लगे। सर्वोत्कृष्ट भक्ति वही होती है, जिसमें किसी प्रकार की कामना नहीं रहती। इस प्रकार,

विकाररहित ज्ञान, निष्काम कर्म और अविचल भक्ति में अभिन्न सम्बन्ध है। तत्त्वतः, ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों की अनुपम अन्विति है भगवद्गीता।

इसमें सन्देह नहीं कि कर्म-रहित ज्ञान व्यर्थ का भार है, भक्ति-रहित ज्ञान अमान्य और अशुभसूचक है। चूँकि गीता मंगल-विधान से परिपूर्ण है, इसलिए उसमें सक्रियता, सतर्कता तथा वीरता के प्रति असीम आदर का भाव दिखलाया गया है और निष्क्रियता, दुष्टता, कायरता आदि दृष्प्रवृत्तियों का विखण्डन किया गया है।

किसी भी युग में 'गीता की प्रासंगिकता' पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता। जीवन जीने की अक्षुण्ण कला है वह। सफल, सार्थक तथा सुव्यवस्थित जीवन-यापन का जैसा सम्यक् तथा कुशल मार्गदर्शन गीता से प्राप्त होता है, वैसा किसी अन्य साधन से संभव नहीं। सार्वकालिक एवं सार्वभौम दर्शन है गीता का।

परमशान्ति की प्राप्ति जीवन का सबसे महान् लक्ष्य मानी जाती है। इस अवधारणा में कभी कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।-यदि मानवता का प्राधान्य न रहे, तो बात अलग है। वैसे, शान्ति की सनातन धारणा है सभी कालों और सभी देशों के लिए परम ग्राह्य। परन्तु, इसके लिए त्याग करना पड़ता है क्षुद्रताओं का, अनर्गल-अनुचित कर्मों का, तृष्णा, आसक्ति, स्वार्थ और अहंकार का। इस प्रकार के त्याग से तत्काल ही शान्ति मिलती है: 'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।'

-गीता,१२.१२।

गीता में ज्ञान-विज्ञान के मूल तत्त्वों का अन्यतम उपस्थापन है। आठ प्रकार की अपरा प्रकृति--पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश मन, बुद्धि और अहंकार के साथ परा प्रकृति अर्थात् चेतन, जिससे सम्पूर्ण जगत् विकसित होता रहता है, का भी सूक्ष्मविवेचन किया गया है इस अनुपम शास्त्र में। पराशक्ति दो नहीं हो सकती-मूल चेतन-परमतत्त्व है वह। उसे तत्त्व से जानने का अभिप्राय है परमात्म साक्षात्कार हो जाना। इसके लिए अध्यात्म-चिन्तन परम अपेक्षित है। गीता में आध्यात्मिक ज्ञान को एकमात्र सही और शाश्वत ज्ञान माना है भगवान् श्रीकृष्ण ने।

विकल है आज का विश्व। जीवन का सही लक्ष्य ओझल हो गया है कृत्रिम समस्याओं से। नई पीढ़ी भटकाव की स्थिति में है। उसे भ्रष्टाचार के घने अंधकार में सही दिशा दिखाई ही नहीं पड़ती। लोग कर्त्तव्य को भूलकर केवल अधिकार की रट लगा रहे हैं। इससे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। त्याग, परोपकार, सहानुभूति आदि श्रेष्ठ गुणों का लोप होता जा रहा है। यह मानवता के पतन का सूचक है, उत्थान का नहीं। अस्तु, आवश्यकता है 'भगवद्गीता' को ठीक से समझने की, उसके द्वारा निर्दिष्ट मार्गों पर चलने की। इसके अध्ययन-श्रवण का अधिकार सबको है। इसमें वर्ण, जाति, सम्प्रदाय आदि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

श्रीमद्भगवद्गीता का मार्ग त्याग का मार्ग है, सत्य, सात्त्विकता तथा शान्ति का मार्ग है। हमें अहिंसा का पक्षधर रहना है, पर नहीं देना है कभी भी कायरता का परिचय। कायरता से जीवन भार बन जाता है, व्यवस्था बिगड़ जाती है, मर्यादाएँ समाप्त हो जाती हैं। अमर्यादित जीवन मनुष्य का नहीं कहला सकता। इसलिए, सत्य, न्याय, स्वाधीनता, कर्त्तव्यपरायणता, सुरक्षा, शान्ति और सुव्यवस्था के लिए गीता की प्रासंगिकता सदा-सर्वदा बनी रहेगी। गीता-गान अमर है। सभी कालों और स्थानों के लिए प्रतिपल परम हितकारी है वह।

-(कैसेट से गृहीत)

❖

पुस्तक समीक्षा-

'अगस्त्य-संहिता'। वैष्णव पांचरात्र का आगमशास्त्रीय ग्रन्थ। रामोपासना का प्राचीनतम ग्रन्थ। सम्पादक- पं. भवनाथ झा। प्रकाशक- महावीर मन्दिर प्रकाशन। २००९ ई.। पृ.सं. - ६०+२७४। डिमाई १६ पेजी। मूल्यः- सजिल्द- २०० रु., अजिल्द- ५० रु.।

समीक्षक : प्रो. रामविलास चौधरी

महावीर मन्दिर न्यास समिति-परिवार के द्वारा जिन विविध अध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दायित्वों का अनुकरणीय एवम् उत्कृष्ट रूप में निर्वहण किया जा रहा है उनमें 'धर्मायण' पत्रिका के नियमित प्रकाशन के साथ अन्य प्राचीन एवं उपयोगी ग्रन्थों का सस्ते रूप में जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करना भी है।

महावीर मन्दिर प्रकाशनमाला के 25वें पुष्प के रूप में प्रकाशित 'अगस्त्य संहिता' वैष्णवागम पाञ्चरात्र साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। प्राचीन ग्रन्थों के समय-निर्धारण में इतनी उलझने हैं कि उस सन्दर्भ में 'तर्कोऽप्रतिष्ठः' की स्थिति हो जाती है, साथ ही प्रक्षिप्त अंश की बाते 'एक तो करैला तीत दूजे चढे नीम पर' की उक्ति को चरितार्थ करती है।

अस्तु, पाण्डुलिपि विज्ञान के अधीती विद्वान् पं. भवनाथ झा द्वारा सम्पादित 'अगस्त्य-संहिता' रामोपासना का प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें कर्मकाण्ड के अन्तर्गत षोडशोपचार, पंचोपचार तथा एकादशोपचार पूजाविधि का वर्णन 32 अध्यायों में किया गया है। इसमें गार्हस्थ्य धर्म की महिमा के वर्णन के साथ सांसारिक भोग को मोक्ष का बाधक नहीं मानकर, साधक ही माना गया है। किन्तु उस भोग को श्रीराम के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित करना आवश्यक है।

इस 'संहिता' में गृहस्थ और संन्यासियों के लिये अलग-अलग कर्त्तव्य बताये गये हैं। गृहस्थों के लिये कर्मकाण्ड अनिवार्य बताया गया तो संन्यासियों के लिए इसे निषिद्ध कहा गया। योगमार्ग संन्यासियों के लिये विहित है तो गृहस्थों के लिये अपेक्षित नहीं। संन्यासी के लिये आसक्ति पाप का कारण है तो गार्हस्थ्य धर्म में अनासक्ति ही पाप है।

'अगस्त्य-संहिता' में विषयों का विवेचन संवादात्मक शैली में किया गया है। इसमें मुख्य रूप से राम की उपासना के विषय में सुतीक्ष्ण मुनि अपनी जिज्ञासा अगस्त्य ऋषि से करते हैं तथा पार्वतीजी भगवान् शंकर से ऐसे ही प्रश्न करते हैं। यहाँ अगस्त्य और शंकर वक्ता हैं, जबकि सुतीक्ष्ण और पार्वती श्रोता हैं। राम की उपासना में षडक्षर मन्त्र (ॐ रामाय नमः, क्लीं रामाय नमः तथा ह्रीं रामाय नमः आदि) को इष्ट सिद्धि का साधन माना गया है। रामनवमी के व्रत एवं पूजन का वर्णन विस्तार से है। राम के भक्त हनुमान् की आराधना करने की विधियों का विवरण 'अगस्त्य-संहिता' के अन्तिम (बत्तीसवें) अध्याय में हैं।

'अगस्त-संहिता' मूल ग्रन्थ संस्कृत में है, किन्तु इसकी भाषा इतनी सरल है कि संस्कृत की सामान्य रूप से जानकारी रखनेवाला व्यक्ति भी इसे समझ सकता है फिर भी पं. भवनाथ मिश्र द्वारा इसका सरल अनुवाद कर देने पर सोने में सुगन्ध की भावना होने लगती है।

ऐसे महनीय अन्य ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन भविष्य में भी लोकोपकार की दृष्टि से वांछनीय है।

❖